कितना सुंदर जोड़ा

कहानी-संग्रह

कितना सुंदर जोड़ा

सुरेन्द्र वर्मा

कहानी-क्रम

कितना
सुंदर
जोड़ा

चैस्टर

वीना ने बेचैनी से घड़ी की तरफ देखा। दस बज चुके थे। उसने मेज पर टिकी कुहनियाँ थोड़ा आगे-पीछे खिसकायीं…कसमसाकर पहलू बदला और सामने खुली किताब पर नजर घुमायी। बायें पन्ने पर न जाने कब का मरा, एक बिल्कुल दबा, सपाट पतंगा चिपका था। टेबुल-लैंप के गोलाकार प्रकाश के दायरे में उसकी दायीं हथेली और तीन उँगलियों में थमी हुई लाल पेंसिल भी आ गयी थी। जब खुले पृष्ठ पर पंक्ति रेखांकित करती, तो अँगूठी का नग बहुत हल्के-से झिलमिला उठता।

घड़ी की अनवरत टिक्-टिक् के अलावा कमरे में खामोशी थी। लैंप के पीछे, मेज के कोने में रखी रेडियम डायल की घड़ी के अंकों के बिंदु और सुइयाँ चमक रही थीं। पेंसिल का सिरा मेज पर खट्-खट् बजाते हुए उसने सीढ़ियों की तरफ कान लगाये, लेकिन कोई आहट सुनायी नहीं दी। "आखिर माँ आज ऊपर क्यों नहीं आती ?" उसने मन-ही-मन कहा और झुंझलाकर किताब उठा रैक पर रख दी। कुछ क्षण यों ही चुपचाप बैठी रही। फिर कुर्सी खींचकर उठी और पर्दा सरकाती हुई दरवाजा खोलकर

बाहर आ गयी। छत पर पैर रखते ही हवा का एक झोंका एकदम मुँह पर आकर लगा।

मुँडेर के निकट आकर उसने नीचे झाँका। बिन्नो चौका-बर्तन कर चुकी थी और अपने गीले हाथ धोती के छोर से पोंछती हुई आँगन में बरामदे की ओर बढ़ रही थी। आँगन की बायीं दीवार के कोने पर लगे बल्ब के प्रकाश में उसकी हिलती-डुलती लंबी छाया ने दायीं दीवार के एक बड़े भाग को घेर लिया था। बरामदे में चारपाई पर बैठी माँ सामने पानदान रखे पान लगा रही थीं। उन्हीं के निकट एक खंभे की आड़ में आधी छुपी खड़ी उम्मी हाथ में धोबी के कपड़ों की कॉपी लिए शाम को धुलकर आए कपड़े मिला रही थी।

हर तरफ सन्नाटा और अँधेरा था। कभी-कभी दायीं तरफ, बाजार से किसी गुजरती हुई कार का हॉर्न सुनायी दे जाता।···बाहर सर्दी और भी ज़्यादा थी।···बीना ने अपनी ठंडी, अकड़ी हुई-सी उँगलियाँ मुँह पर फिरायीं। इतनी ही देर में नाक, कान, गाल, माथा···एकदम सर्द पड़ चुके थे।

बगल के बड़े कमरे में अखबार के पन्ने फड़फड़ाये, तो उसने जाना कि पिताजी अभी तक जाग रहे हैं। वह कुछ क्षण अनिश्चय में खड़ी रही। फिर भिड़ा हुआ दरवाजा खोलकर बड़े कमरे में आ गयी।

कमरे के बीच दोनों चारपाइयों पर बिस्तर बिछे हुए थे। दरी और गद्दे पर, पीली और लाल धारियोंवाली चादरें, कोनों पर कढ़े हुए रंग-बिरंगे फूलों वाले गिलाफ और पैंताने तह की हुई सफेद खोल-चढ़ी रजाई। बायीं ओर दीवार से सटे छह ट्रंक और एक बाँस की पेटी थी। हर ट्रंक पर रंगीन कवर। दायीं ओर दीवार में लगी दो आलमारियों के पल्लों के ऊपरी भाग में लगे काँच में से, जग, सजी हुई प्लेटें और कप दिखायी दे रहे थे।

"बीना ! बिस्तर से जरा माचिस उठाना बेटी !"

"जी !" वह धीरे से बोली और सिरहाने, तकिये के बगल से माचिस उठायी, "लीजिए।"

उन्होंने सिगरेट सुलगाकर तीली मेज पर रखी ऐश-ट्रे में फेंक दी।

फिर गोद में फैला अखबार मोड़ा, चश्मा उतारा और आँखें सहलाने लगे। तभी सीढ़ियों पर हल्की आहट सुनायी दी और कुछ क्षणों बाद चादर में लिपटे कपड़े उठाये माँ प्रविष्ट हुईं। उन्होंने कपड़े अपने बिस्तर पर रखे और तकिये के एक मैले गिलाफ के बटन खोलने लगीं।···उम्मी ने कनखियों से पिताजी की ओर देखा। उन्होंने आधी पी सिगरेट ऐश-ट्रे में मसल दी और जमुहाई लेते हुए उठकर पलंग पर बैठ गये। फिर पैर स्लीपर से निकाले और लेटते हुए रजायी ओढ़कर उधर को करवट ले ली।

मेज पर एक किताब उलटती-पलटती बीना मुड़ी—और उसके मन में बहुत देर से थपेड़े मारती अनकही बात होंठों का बाँध तोड़कर वह निकली, "माँ! उम्मी दीदी को एक चैस्टर क्यों नहीं बनवा देतीं?···आज रीता की मम्मी ने दीदी को दो-तीन बार टोका, बेटी! ऐसी सर्दी में काली स्वेटर क्यों पहन रखा है···दीदी बेचारी कुछ भी न कह पायीं।···सब सहेलियाँ जमा थीं, मुझे तो ऐसी शर्म लगी···"

उन्होंने एक नजर पति की ओर देखा, फिर जरा मुस्कराकर संयत स्वर में कहा, "जब बाहर कहीं जाना हो, तो उम्मी को अपना कोई चैस्टर दे दिया करो न!"

"हाँ, अपना दे दिया करो!" बीना तुनक कर बोली, "जैसे मेरी सहेलियाँ मेरे कपड़े पहचानतीं ही नहीं···और फिर दीदी को मेरे चैस्टर ठीक आयेंगे भी?"

उन्होंने क्षुब्ध हो, धुले गिलाफ की तहें खोलते हुए कहा, "तो फिर जहाँ जाना हो, अकेली आया-जाया करो। किसने कहा है कि तुम्हारे साथ उम्मी का जाना भी जरूरी है···हाँ नहीं तो!" फिर पति की ओर मुड़ीं, "सुनी आपने अपनी लाड़ली की फरमाइश?"

रजाई में से उनके सिर का पिछला भाग और तकिये के एक किनारे पर टिकी दायीं हथेली ही दिखाई दे रही थी। बीना की अर्थपूर्ण दृष्टि उन पर जमी थी। वह उनके बहुत हल्के समतल खर्राटे सुन सकती थी, पर उसे विश्वास था कि वे अभी सोये नहीं होंगे···लेकिन उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके उत्तर की अपेक्षा भी नहीं की गयी।

"कपड़े के भाव तो आजकल आसमान पर चढ़े हुए हैं। चालीस-पचास

ो अच्छा-सा कपड़ा ही आयेगा···पैसे लगें, तो फिर चीज भी टिकाऊ ··फिर बीसेक रुपये सिलायी के···साठ-सत्तर से कम का डौल नहीं है।" ाेने उठ कर मैला गिलाफ बाँस की पेटी में डाला, "इन दिनों खर्चे वैसे बढ़े हुए हैं···एक वो सोफासेट लिया···इसी महीने बीमे की किस्त देनी जीजी की बीमारी में···" आवाज धीमी हो गयी, "अस्सी की चपत ा गयी। रमेश ने अब की पचास रुपये ज़्यादा मँगाये हैं। लिखा है, तीन ्ताबों की जरूरत है। सत्ताइस तरीख को निशी की शादी है, पाँव-जराई में कम-से-कम एक सोने की चीज तो चाहिए ही।···अब घर में ोई पेड़ तो लगा नहीं है कि हिला दिया और रुपये बरस पड़े।"

वीना चुपचाप उँगली में दुपट्टे का कोना लपेटती-खोलती रही। कुछ ्षण लगातार रॉड की ओर देखा···आँखें चौंधिया गयीं, तो बंद कर लीं, लेकिन लगा कि बंद आँखों से भी चमचमाता हुआ रॉड दिखलायी दे रहा है।

माँ ने छत पर जाकर पान की पीक थूकी। फिर कमरे में आकर कोने में रखी सुराही से गिलास में पानी भरते हुए कहा, "आज का जमाना तो ऐसा बेपीर है कि सगा बेटा बाप को नहीं पूछता, लेकिन हमने इसके लिए जितना कर दिया···सो सब जानते हैं। पूरे सात साल हो गये जेठजी को गुजरे, तब से माँ-बेटी पास हैं। कोई कहे तो, किस बात में कसर रह गयी। बड़ी लड़की को ऐसे घर में ब्याह दिया, जैसा दुनिया-जहान में ढूँढ़े न मिले। जमीन-जायदाद, मोटर-बँगला···पलंग पर बैठी राज करती है। अब भगवान की दया से मेरे बच्चे भी सयाने हो गये हैं, मुझे भी तो कुछ आगा-पीछा देखना है। कल तक जितनी गुंजाइश थी, सो किया, आज उतनी गुंजाइश नहीं, तो हाथ खींचना ही पड़ेगा। अपनी चादर देख कर ही तो आदमी पाँव पसारता है।"

वीना ने मन में कहा, "रिस्पेक्टेड मदर! बड़ी गलती हो गयी।··· अब अपना लेक्चर बंद करो।···फॉर गॉड'स सेक।"

"फिर मैं कहती हूँ, क्या हमीं ने जनम-जिंदगी का ठेका ले रखा है? आखिर दूसरे चाचा-चाची भी तो हैं, हजार-पाँच सौ कोस दूर नहीं, यहीं फर्लांग-भर के फासले पर, जिनके यहाँ दो-दो कमाइयाँ आती हैं। ज्यादा

तो हम खुदी नहीं कहते, लेकिन अगर वे बिना बाप की भतीजी के लिए सत्तर रुपट्टी का मोह त्याग देंगे, तो खजाने में कौन-सा टोटा आ जायेगा ?"

शलवार में नाड़ा डालते हुए वीना ने एक हाथ से सिटकनी नीचे कर सायवान पर खुलने वाला दरवाजा खोला और उजली, चमकती धूप का एक बड़ा-सा टुकड़ा सर्राटे से फर्श पर बिछे कारपेट पर लेट गया, जैसे बंद दरवाजे से टिका खड़ा-खड़ा थक गया हो।

कमरा छोटा-सा था। बायीं ओर कोने में सुर्ख लाल रंग के टेबुल-क्लाथ वाली रीडिंग टेबुल, उसके एक किनारे पर रैक था और दूसरे पर हल्के गुलाबी रंग के शेड वाला टेबुल-लैंप। सामने की तरफ एक बड़ा-सा काँच का टुकड़ा, जिसके नीचे दो-तीन छोटे-छोटे फोटो दबे थे। लैंप के बगल में घड़ी, पेपरवेट, पिन-कुशन, पेन-स्टैंड। टेबुल के निकट वार्डरोब थी और दायीं तरफ कोने में ड्रेसिंग-टेबुल, जिस पर पाउडर के डिब्बे, क्रीम, नेल-पॉलिश की शीशियाँ, चूड़ियाँ आदि बिखरी हुई थीं। उसके बगल में पलंग पर बड़े-बड़े नीले फूलों वाला बेड-कवर पड़ा था। दूसरे कोने में छोटी-सी टेबुल पर एक बड़ा-सा रेडियो था, जिस पर मुस्कराने की मुद्रा में खड़ी एक गुड़िया रेडियो के लाल रेशमी कवर को छूती अपनी सफेद साड़ी सँभाल रही थी। दीवारों पर सफेद फ्रेमों में सात-आठ फोटो लगे थे।

···ड्रेसिंग-टेबुल के सामने बैठी वीना ने देखा कि उम्मी कमरे में घुस रही है। दरवाजे से निकलकर इस ओर आते हुए उसकी निगाहें क्षण-भर के लिए जो अपने प्रतिबिंब पर जम गयीं, तो वीना ने खाँसकर शरारत से कहा, "अरे दीदी ! वहाँ न देखो।"

"क्यों ?"

"शीशा न टूट जाये कहीं !" उसने एक ठंडी साँस ली।

"और तुम देख रही हो, सो ?"

"अपना क्या है ! ···मामूली सूरत···चाँद-से मुखड़ों की बात दूसरी है···।"

"अच्छा, बेकार की बातें न करो।" उम्मी ने तेज आवाज में बात काटी।

वीना ने मुड़कर उसकी ओर देखा, "ओफ्फो दीदी! तुम तो अपने छह महीने बड़े होने का बड़ा फायदा उठाती हो। ऐसे डाँट देती हो मुझे, जैसे मैंने जिंदगी की सत्रह नहीं, सात बहारें देखी हों।"

"छी:-छी: वीना! कैसे बोल-कुबोल बोलती हो तुम! शरम नहीं आती?···चाची सुनें, तो क्या कहें!" फिर जरा रुककर कहा, "युनिवर्सिटी नहीं जाना है?"

"जाना है।···जा तो रहे हैं।" वीना रूठे स्वर में बोली।

"अरे, गुस्सा हो गयीं?" उम्मी ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा बाबा! गलती हुई, माफ करो।" और दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा लिए, "आगे ऐसा कभी नहीं होगा।"

"रहने दो।···हर बार कह देती हो और फिर डाँटने लगती हो।" वीना ने मना करते हुए गर्दन झटकी।

"अरे भई, अब नहीं कहेंगे कुछ। जो जी में आये, सो कहा करो।" उम्मी ने उसके गाल पर एक प्यार की चपत लगाते हुए कहा, "आज तुम्हारे कितने पीरियड हैं?"

"दो पीरियड और एक सेमीनार···अनिल भैया का!" वीना ने क्रीम की शीशी खोली और एक उँगली की पोर से क्रीम की छोटी-छोटी आठ-दस बिंदियाँ मुँह पर लगायीं। फिर आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें मलने लगी।

"अनिल भैया तुम्हारे कितने पीरियड लेते हैं?" उम्मी पीछे दीवार से टिकी, दोनों हाथ वक्ष पर बाँधे खड़ी थी।

"डेली एक पीरियड और वीक में एक सेमीनार!"

"अच्छा, पढ़ाते कैसा हैं?"

"बहुत अच्छा···दीदी!···एकदम फ्लूएंट बोलते हैं।" वीना ने पाउडर का डिब्बा उठाया, "उनकी पर्सनैल्टी तो बड़ा इक्सप्रेस करती है। लाइट ब्लू सूट पहने, बगल में रजिस्टर दबाये जब खट्-खट् करते क्लास में आते हैं तो···" कहते-कहते एकदम हँसकर बोली, "दीदी! तुम रूप को तो जानती हो न? रूप निगम···कल रीता के यहाँ भी थी।"

"वही न···जिसका कद छोटा है···बात-बात पर हँसती है ?" उम्मी ने सोचते हुए कहा।

"हाँ-हाँ, वही ! उसके साथ तो दीदी, बडी ट्रैजेडी हुई।" वीना हँसकर, चटखारे लेती हुई बोली, "अनिल भैया के एप्वाइंटमेंट के बाद जब उसे पता चला कि मैं उनकी कजिन हूँ, तो उसने मुझसे एकदम दोस्ती बढानी शुरू कर दी। युनिवर्सिटी-कैम्पस मे जहाँ भी मिले, तो 'हैलो वीना, हैलो वीना' करे। हम लोगों के दो पीरियड साथ पडते है, उनमे हमेशा मेरे पास बैठे। एक बार मुझे अपने यहाँ टी पर इन्वाइट किया। मैं परेशान कि आखिर बात क्या है ! फिर एक रोज मुझे रीता ने बतलाया कि ये तुम्हारे अनिल भैया पर बहुत स्वीट हैं। तब मजबूरन मुझे उसके सामने यह हर्टब्रोकेन फैक्ट क्लीअर करना पडा कि मेरे ब्रदर न सिर्फ ऑलरेडी मैरिड हैं, बल्कि बहुत जल्दी डैडी भी बननेवाले हैं।" उसने एक ठहाका लगाया, "इसके बाद बेचारी पूरे एक हफ्ते तक युनिवर्सिटी नहीं आयी।"

उम्मी दाँतों के बीच एक उँगुली दबाये, अनमनी-सी उसकी ओर देख रही थी।

वीना उठ खडी हुई, और घूम-फिरकर चारों ओर से अपने को शीशे में देखा। फिर एक पैर स्टूल पर रख, शीशे की ओर जरा झुकी और बालों की एक लट उँगली मे लपेट कर घुँघराली-सी बनाने लगी, फिर बोली, "अनिल भैया को लेक्चररशिप मिल जाने पर सबसे ज्यादा खुशी हुई है मझली चाची को···और सबसे ज्यादा दुख हुआ है मुझे।"

"क्यों ? आपको क्या तकलीफ है ?" उम्मी ने जरा मुस्करा कर पूछा।

"अरे दीदी ! सारी लिबर्टी छिन गयी। ठीक टाइम पर आना, ठीक टाइम पर जाना, सारे पीरियड अटेंड करना, डिपार्टमेंट में ऐसे रहना जैसे भीगी बिल्ली···या सहमा कबूतर !" कहते समय वीना सीधी खड़ी, मुस्कराती हुई रिबन बाँध रही थी। सफेद, दमकती हुई चार इंच मुहरी की सलवार, चुस्त आसमानी रंग का कुर्ता, गले, कधों और नीचे किनारों पर रंग-बिरंगी सिलाई की मखमली जैकेट, गले मे लापरवाही से लपेटा हुआ दुपट्टा, एक चोटी पीछे, एक वक्ष पर झूलती हुई, बायीं कलाई पर कुछ

ऊपर की तरफ घड़ी, दाहिनी कलाई में पाँच-छह चूड़ियाँ, पैरों में दो सीधे, काले स्ट्रैप की चप्पलें।

"बड़ी चाची के पास कौन है दीदी ? विन्नो ?" वीना ने सहसा पूछा।

"हूँ।"

"उन्हें दवा पिलायी ?"

"हाँ···पिला दी है।" फिर जरा रुककर धीमी आवाज में कहा, "वीना ! मुझे एक लिफाफा दोगी ?"

"हाँ-हाँ।" वीना उसकी ओर मुड़ी, "किसे लिखना है ?···शैल जिज्जी को ?"

"हूँ !" उम्मी खोयी-खोयी निगाहों से उसकी ओर देख रही थी।

वीना मेज के निकट पहुँची। रैक से एक किताब उठाकर उसके बीच से लिफाफा निकाला और मेज पर पेपरवेटतले दबाती हुई बोली, "जिज्जी और जीजाजी को मेरी नमस्ते लिख देना।···अच्छा ?" और फाइल बगल में दबाकर उम्मी की ओर मुड़ी, "अरे, फिर तुमने नाखून चबाये दीदी ?··· मैं हमेशा कहती हूँ, लेकिन तुम मेरी सुनतीं ही नहीं।···देखो तो नाखून कैसे खराब कर डाले हैं ?"

उम्मी ने चौंककर उसकी ओर देखा, फिर फीकी-सी मुस्कराहट होंठों पर लिए, न जाने कैसी आवाज में कहा, "मुझे नाखून किसे दिखाना है ?" और सरकता आँचल सँभालती हुई सायबान पर आ गयी।

वीना को लेकर रिक्शा जब गली के मोड़ पर मुड़ गया, तब भी उम्मी खंभे से टिकी सायबान पर खड़ी रही। बारह बज रहे थे। घर में खामोशी छायी थी। सामने मकान की छत से उतरकर धूप गली के दोनों किनारों को छूने लगी थी। कभी-कभी दायीं तरफ से बाजार का कोलाहल उभर आता था। ऊँची-ऊँची अस्पष्ट आवाजें, कारों-ट्रकों के हॉर्न और रिक्शों-ताँगों की खड़खड़ाहट का मिला-जुला शोर···सायबान के निकट, बिजली के खंभे पर दो चिड़ियाँ बैठ गयीं, लगातार हिलती-डुलती उनकी गर्दनें, छोटी-छोटी चमकती-सी आँखें···उड़ीं, तो परों की हल्की फड़फड़ाहट··· सामने खंभे के निचले दो तारों के बीच न जाने कब से एक बहुत फटी पतंग

अटकी हुई थी, बचा-खुचा जरा-सा पतला कागज बारिश में बिल्कुल मट-मैला हो गया था···तारों में उलझा हुआ डोर···हवा के झोंके से फटी, बदरंग पतंग सरसरा उठती।

इस खामोशी-सी दोपहर में, आज बहुत दिनों के बाद, मन की निचली पर्तों में दबे, जंग लगे सिक्के की तरह एक पुरानी, घुन लगी चाह उभर आयी। काश ! वह भी पढ़ सकती ! उसका अपना अलग कमरा होता··· कपड़ों से भरा वार्डरोब, ड्रेसिंग-टेबुल, शेल्फ, रेडियो···हँसी-मुस्कराहटें ···एक बहुत प्रिय सहेली, जिसका साथ छोड़ने को कभी मन न हो।

बाबूजी उसे कितना चाहते थे ! शैल जिज्जी हमेशा बनावटी गुस्से में कहती, "माँ ! तुम सब उम्मी को मुझसे ज्यादा प्यार करते हो।"···माँ हँसकर रह जाती···अगर आज के दिन बाबूजी होते तो क्यों उसकी पढ़ाई रुक जाती, क्यों उसे इस तरह घर के कामों में उलझे रहना पड़ता ! ··· सुबह से रात तक बस यही आँगन, यही रसोईघर, चूल्हे की आँच, प्लेटों-बर्तनों की खनखनाहट···या ये अकेले कमरे···

उसकी आँखें भर आयीं।···उसका कितना मन होता है···वह रोज साड़ियाँ बदलकर आँचल सरसराती हुई बाहर निकले···हाथ में एकाध किताब, चाल में बेफिक्री, होंठों पर भीनी-भीनी मुस्कराहट···कॉलेज की मनोरंजक दिनचर्या···एक सहेली के साथ किसी फिल्म का मैटिनी शो··· हॉल के अँधेरे में उसके कान से मुँह लगाकर हल्की फुसफुसाहट···उसके यहाँ जाना, उसे अपने यहाँ बुलाना···रात को देर तक पढ़ाई···न आँसू, न उदासी···न दम घोटने वाला अकेलापन···

कैसी तकदीर लेकर आयी है ! लेकिन चाची का क्या दोष ? उन्होंने इतना तो कर दिया। कब से बोझ उठा रही हैं। शैल जिज्जी ने एक बार कहा था, "उम्मी ! चाची के लिए मन में मैल मत लाना।" जिज्जी की याद आयी तो उनके सुख की कल्पना ने मन को बड़ा संतोष मिला। उनकी कितनी अच्छी ससुराल है, सब लोग कितना मानते हैं !

नीचे गली में खड़े बात करते दो आदमियों में से एक, रह-रहकर ऊपर सायबान की तरफ देख लेता था, सो वह अंदर कमरे में आ गयी। बीना ने कपड़ों की आलमारी खुली छोड़ दी थी, ड्रेसिंग-टेबुल पर तेल और

क्रीम की शीशियाँ भी खुली पड़ी थीं, आधे लगे ड्राअर में से एक लाल रिबन नीचे लटक रहा था। शीशे के सामने आकर, वह सहसा रुक गयी।··· दुबली-पतली देह, गोरा रंग, कुछ लंबा-सा चेहरा, खूब बड़ी-बड़ी, काली आँखें···पतले-पतले होंठ, मन में कहा···हाँ! मैं सुन्दर हूँ।···लेकिन यह क्या है? चेहरे पर यह कैसा खोया-खोयापन, आँखें कैसी सूनी-सूनी हैं··· जैसे कुछ देख रही हों, पर यह न जानती हों कि क्या देख रही हैं।

शीशे पर नजर जमाये ही एकाएक वीना का याद आया मजाक होंठों पर मुस्कराहट बन कर जी उठा। उसने टेबुल की चीजें ठीक से रखीं, पलंग पर पड़ी वीना की एक साड़ी तह की। मेज के एक चिकने कोने पर जरा-सा पाउडर बिखर गया था, उसे आँचल के छोर से ही पोंछ दिया। आलमारी बंद करते हुए, अनजाने ही मुँह से एक ठंडी साँस निकली तो उसे अपने-आप पर बड़ी शर्म आयी, "छीः, छीः! उसे अपनी वीना से ईर्ष्या होती है!"

उम्मी घर से चली तो, लेकिन उसका मन बहुत भारी था। कितना कुछ कहा, पर चाची को अगर किसी बात की रट लग जाये तो फिर किसी की सुनती नहीं! जब से अनिल भैया लेक्चरर हुए थे, मझली चाची के यहाँ की यह दूसरी कमाई उन्हें काँटे की तरह चुभने लगी थी। बात-बात में टेढ़े स्वर में कहतीं, "उनका क्या शरीगत, उनके यहाँ तो दो-दो कमाइयाँ आती हैं।"···जरा उनकी तरफ से तो सोचतीं। मझली चाची का बड़ा लड़का ही तो कमा रहा है, एक बाहर और तीन लड़के यहाँ पढ़ रहे हैं, दो छोटी लड़कियाँ, बहू···भरीपूरी गृहस्थी है।

मझली चाची के घर में घुसते ही उसे बड़ा शोरगुल सुनायी दिया। आँगन में राजू, रेनू दो-तीन और बच्चों के साथ कतार बाँधे हाथों में छोटी-छोटी झंड़ियाँ थामे गला फाड़फाड़कर 'हिंदुस्तान हमारा है' चिल्ला रहे थे। उसे देखा, तो 'उम्मी दीऽऽदी···जिंदाऽबाऽऽऽ' का भी नारा लगा दिया।

बरामदे में आलमारी की ओर बढ़ते हुए साँवली-सलोनी भाभी ने मुड़-कर मुस्कराते हुए उसकी तरफ देखा, फिर बनावटी नाराजगी से मुँह फेर

उन्होंने सिकी हुई, लाल-लाल कुरकुरी पकौड़ियाँ झरिया में लेकर कढ़ाई के ऊपरी हिस्से में हल्के-से दबायीं। तेल की बड़ी-बड़ी बूँदें फिसलती हुई नीचे आ गयीं। फिर बायें हाथ से एक थाली कढ़ाई से सटाकर, उसमें पकौड़ियाँ लेते हुए उन्होंने कहा, "पाँवों का दरद उस दवा से ठीक हुआ?"

"शाम की वेला हो आता है। वैसे पहले से फायदा है।" जरा रुककर, उठने का उपक्रम करते हुए वह बोली, "तुम उठ आओ चाची! मैं बना देती हूँ।"

"बैठो बेटा, बैठो! बस, थोड़ी-सी तो बची हैं।" उन्होंने व्यस्त होकर कहा।

स्टोव से कढ़ाई उतरी तो भाभी ने चाय का पानी चढ़ाकर बर्तन उठाये और आँगन के नाली के निकट वाले कोने में, खंभे से टिका कर रख दिये। चाची नल के नीचे हाथ धोने लगीं। उम्मी को लगा, गले में कुछ अटक-सा रहा है। मन फिर भारी-भारी होने लगा। क्या करे, कैसे कहे, उससे तो नहीं कहा जायेगा। जी में आया, बस! ऐसे ही, बिना कुछ कहे लौट जाये···लेकिन तभी छोटी चाची का चेहरा आँखों के सामने घूम गया। वे घर में पैर रखते ही पूछेंगी, "क्या जवाब दिया?" उसे रुलायी-सी आने लगी।—हे भगवान! क्या मुसीबत है?

रसोईघर की बायीं, चूल्हेवाली दीवार धुएँ से काली हो गयी थी। बिजली के तारों पर लगी लकड़ी की पट्टी, होल्डर और बल्ब पर भी कालिख की एक मोटी तह जमी थी। गेरुए रंग से पुती दीवारें चितकबरी-सी लग रही थीं। दायीं ओर दीवार पर बने दो बड़े-बड़े खानों में से एक में बर्तन लगे थे और दूसरे में मसाले वगैरह के छोटे-बड़े डिब्बे। उसी तरफ, लकड़ी की एक जालीदार आलमारी के ऊपरी हिस्से में रक्खा दूध से भरा, प्लेट से ढका काँच का गिलास दिखायी दे रहा था। वह हथेली पर मुँह टिकाये, एकरस सूँ-सूँ आवाज करते स्टोव की ओर देख रही थी। उसके बगल में रक्खी बोतल में स्प्रिट की गंध आ रही थी। पास ही बर्नर और पिनों का लंबा, पीला पैकेट पड़ा हुआ था। बर्नर के नीचे फर्श पर जलने का एक काला निशान बन गया था। पतीली का ढक्कन एक ओर जरा हट जाने से गर्म भाप निकल रही थी। स्टोव की लौ काँप रही थी···गोल,

नीली लौ…

पानी खौलने लगा तो भाभी ने डिब्बा खोला, पत्ती डाली, फिर पतीली के गर्म, भाप छोड़ते किनारे आँचल के छोर से पकड़कर केटली में चाय छानने लगीं।

रेनू ने ऊपर छत पर से झाँककर पूछा, "भाभी! बड़े भैया पूछ रहे हैं, चाय बन गयी?"

भाभी सुरीली आवाज में बोलीं, "हाँ, बन गयी।…कह दो, ला रहे हैं।"

वे एक हाथ में चाय का कप और दूसरे में पकौड़ियों की तश्तरी लेकर जैसे ही ऊपर जाने को उठीं, उम्मी ने धीरे से खाँस कर कहा, "भाभी! कहीं वहीं की होकर न रह जाना।"

भाभी ने एक नजर इस तरफ आती सास की ओर देखा, फिर भौंहें टेढ़ी करके भरसक मुस्कान दबाते हुए, धीमे स्वर में धमकाया, "अभी बताती हूँ, रानी!"

चाची उसके सामने चाय रखकर बगल में दूसरे पीढ़े पर बैठ गयीं। बस, अब कह देना चाहिए, उसने सोचा, अगर भाभी आ गयीं, तो उनके सामने तो वह हर्गिज नहीं कह पायेगी।

उसने कहना चाहा, "चाची! मैं सच कहती हूँ, मुझे चैस्टर-वैस्टर की ऐसी कोई खास जरूरत नहीं! बाहर मुझे भला जाना ही कहाँ होता है, लेकिन छोटी चाची तीन दिन से मेरे पीछे पड़ी हैं कि मैं तुमसे कहूँ कि…" लेकिन वह आते वक्त, सारे रास्ते में सैकड़ों बार दुहराये हुए, सिर्फ छह शब्द ही कह सकी, "चाची! मुझे एक चैस्टर बनवा दो…" और लगा कि गला रुँध-सा गया है और मन में लगातार एक ही बात चक्कर काट रही है, काश! आज बाबूजी होते…

कुछ देर खामोशी रही। बरामदे में बैठे हुए राजू ने रबर की गेंद उछाली, तो वह सामने दीवार से टकरायी, फिर टप्पे खाती हुई वापस लौट गयी। नल में बाल्टी में बूँद-बूँद पानी टपक रहा था। भरी बाल्टी से रुक-रुककर जरा-सा पानी छलक जाता…धीमी कल-कल आवाज…वह सिर नीचा किये उस ही तरह बैठी-सी रही थी. सफेद फ्लैट पर दो ओर आमने-

सामने तीन लकीरें, दो छोटी, बीच की बड़ी, कप में हैंडिल के निचले भाग पर चटखने का हल्का-सा काला निशान···गर्म चाय से उठती भाप···

चाची जरा खाँसीं। कसमसायीं, तो चूड़ियाँ खनक गयीं। फिर कहा, "अच्छा बेटी !···वैसे हाथ आजकल बड़ा तंग है। दो महीने से मकान का किराया नहीं दिया। वो तो मुरली बाबू मुरव्वती आदमी हैं, सो निभ जाती है। तुम्हारे चाचा को चश्मा बदलाना है। जाने कब से टाले आ रहे हैं। एक साइकिल को अनिल ले जाता है, सो अब दूसरी साइकिल लेनी पड़ेगी ···अजै को बड़ी परेशानी होती है। बहू के लड़का होना है, पहला मौका ···चाहे कितनी कन्नी काटें, डेढ़-दो सौ से कम नहीं लगने के···।" कुछ रुकीं, "सनीचर के रोज अनिल को तनखा मिली थी। एक सूट का कपड़ा ले लिया, सौ रुपै अमर को भेज दिये। इस पढ़ाई के मारे तो जान साँसत में है।" जरा हँसकर कहा, "लो, तुम भी कहोगी, चाची अपना ही दुखड़ा ले बैठीं।" फिर एक लंबी साँस ली, "जी छोटा न करना बेटी ! जल्दी ही कोशिश करेंगे।"

तभी सहसा खट्-खट् करते हुए अजय ने प्रवेश किया, "अम्मा ! शैल जिज्जी आयी हैं।"

"अरे, कब ?" सीढ़ियाँ उतरती हुई भाभी ठिठक गयीं।

"अच्छा, उम्मी दीदी भी जमी हैं !" उसने निकट आकर कहा, फिर भाभी की ओर मुड़ा, "अभी-अभी···जीजाजी भी हैं···"

"आने की कोई बात तो थी नहीं !···तुमसे किसने कहा ?" चाची उठती हुई बोलीं।

"मैं कल फ्रेंड को सी-ऑफ करने स्टेशन गया था। सडेनली देखा, जिज्जी ठाठ से पर्स लटकाये फर्स्ट क्लास कंपार्टमेंट से उतर रही हैं। यहाँ दो दिन का ब्रेक दे दिया। परसों बॉम्बे चले जायेंगे। वहाँ जीजाजी अपनी फर्म की ब्राँच खोल रहे हैं।" फिर जरा हँसा, बोला, "भाभी! शैल जिज्जी तो अब इतनी स्मार्ट हो गयी हैं, जैसे मिरांडा कॉलेज से निकली हों।··· बाई गॉड् भाभी, बिलीव मी।"

"भई वीना ! चाय लायी हूँ।" उम्मी ने कमरे में घुसते हुए कहा, "आज थोडी देर हो गयी है···" और ट्रे मेज पर रख दी।

"ओफ्फो दीदी ! तुम तो ऐसे एक्सप्लेनेशन देती हो, जैसे···" कहते-कहते एकदम चौंककर बोली "अरे वाह ! रस का गुल्ला ?"

"क्यों ? ···अभी तक नजर नहीं पडी थी क्या ?" उम्मी ने मुस्कराते हुए कहा।

"अरे, कहाँ दीदी !" वीना "सी-सी" करतेहुए बोली, "जरा प्लेट··· इधर···देना।"

"हाँ-हाँ लो ! ···जल्दी खतम करो।"

"तुम भी लो न दीदी !" वीना ने एक रसगुल्ला उसकी ओर बढाया।

"मैं तो खा चुकी हूँ।"

"एक और !"

"न, भई !"

"प्लीज···दीदी !"

"मेरे···हाथ खराब हैं।"

"हम अपने हाथ से खिला देते हैं···।"

"भई वीना···"

"हाँ, हाँ ! आ ऽऽ तो करो।···शाब्बाऽस ? ···उई, दीद्दी ! ···कट्टू-कट्टू···नईं···"

उम्मी ने आँचल का छोर हल्के से होंठों पर फिराया, फिर कहा, "तुम चाय जल्दी पी लो, तो मैं कप-प्लेटें लेती जाऊँ।"

"बस, अभी पीते हैं, पाँच मिनट में !" और चाय का एक घूँट ले हँसकर बोली, "उम्मी दीदी ! एक बात बतलायें ?"

"क्या ?" वह उसके सामने बिस्तर पर बैठ गयी।

"जीजाजी हैं न ! ···अपने जीजाजी···"

"हाँ, तो ?"

"शैल जिज्जी को बहुत प्यार करते हैं।" वीना शरारत से मुस्करायी, "सुबह माँ ने उनसे इतना कहा कि अगर आपका जाना जरूरी है, तो शैल को तो छोड़े जाइए···लेकिन उन्होंने घुमा-फिराकर यह फैक्ट क्लीअर कर

दिया कि वे जिज्जी के बिना नहीं जा सकते।" वह हँसी, "और इधर अपनी जिज्जी भी···"

"धत्···ये भी कोई कहने की बात है !" उम्मी ने उसके गाल पर एक चपत लगायी।

तभी नीचे से पुकार लगी, "उम्मोऽऽ ईं ईं···!"

"दीदी ! तुम्हें शैल जिज्जी बुला रही हैं।" वीना ने कहा।

वह नीचे उतरकर पिछले कमरे में गयी। वे वहाँ अकेली, पलंग पर खुले रखे अपने सूटकेस में कुछ उलट-पुलट रही थीं। उसकी आहट सुनकर पीछे देखे बिना बोलीं, "तू तो बड़ी पगली है, उम्मी ! ···मुझी से छिपाती है ?"

"क्या छुपाती हूँ जिज्जी ? ···क्या छुपाया है ?" उसने हैरान होकर कहा।

"यही सब बातें···चैस्टर-वैस्टर की···!" वे उसकी ओर मुड़ीं, "वह तो दोपहर में मुझे माँ ने बतला दिया, वर्ना मैं आज चली जाती और मुझे कुछ मालूम भी न होता।" कहते हुए झुककर उन्होंने सूटकेस के पीछे से एक बड़ा-सा बादामी पैकेट निकाला और उसे उम्मी की ओर बढ़ाती हुई बोलीं, "देख तो, यह चैस्टर तुझे पसंद है ?"

उसने धीमे स्वर में कहा, "जीजाजी से मँगवाया है ?"

"हाँ, हाँ ! ···तू खोलकर तो देख !" और उन्होंने बाहर झाँककर कि कोई है तो नहीं; दरवाजा बंद कर दिया।

उम्मी ने पैकेट खोला, बैंलोर का बढ़िया कीमती शॉर्ट-चैस्टर था··· रंगीन धारियों के हल्के चौखानें, आस्तीन के निचले भाग, गले और जेब के तीनों किनारों पर दुहरी सिलायी, सामने दो बटन, अन्दर हुक, पीला रेशमी अस्तर···

"बहुत अच्छा है, जिज्जी !" फिर जरा रुककर बोली, "जीजाजी से बेकार कहा। वे अपने मन में क्या सोचते होंगे !"

उन्होंने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं, कहा, "जरा पहन तो···देखूँ, ठीक आता है न !"

उसने चैस्टर पहना, तो उन्होंने ऊपर से नीचे तक उसे गौर से देखा

फिर बड़े मीठे ढग से मुस्करायी, "सब तुझ पर खूब खिल रहा है। देख यहाँ कहीं काजल तो नहीं···"

"क्यों?"

"तुझे डिठौना लगा दूँ।···कहीं मेरी नजर न लग जाये।"

"ऊँऽऽऽ···जिज्जी ऽ···ई ई···।"

उन्होंने हँसकर उसका माथा चूम लिया। फिर धीमे स्वर मे कहा, "सुन उम्मी! मैंने चेस्टर छुपाकर मँगवाया है। तेरे जीजाजी मे कह दिया था कि वे इसे किसी बैग-वैग में रखकर लायें, ताकि कोई देखे न! —बीना को भी एक साडी दे रही हूँ।···चाची मे कह जाऊँगी कि मैंये चीजें दिल्ली से ही लायी थी।" उन्हें जरा खाँसी आ गयी, "यह भी कह दूँगी कि वे मझली चाची से कुछ न कहें।···राजू-रेनू को कुछ दिया नहीं, उन्हे बेकार बुरा लगेगा।···ठीक है न?"

"हूँ ऽऽ!"

उसने चेस्टर उतारकर पैकेट में रखा, मोट बादामी कागज में हल्की खरखराहट हुई। ऊपर पहले की तरह पतला, लाल रेशमी फीता बाँध दिया। अँधेरा छाने लगा था, सो बत्ती जला दी।···छोटा-सा कमरा··· बीच में दो चारपाइयाँ···एक पर सिरहाने लपेटा हुआ बिस्तर रखा था। नीली, पीली और लाल धारियों की दरी में से सफेद चादर का एक छोर बाहर निकल आया था। एक तरफ दीवार मे सटे, ईंटों पर रखे दो-तीन ट्रंक, जिनका रंग-रोगन उतर चुका था और ऊपरी हिस्से पर लंबे-लंबे खरोंच के निशान थे।···सामने खिड़की पर पिछवाडे, निचले खंडहर में लगे नीम की शाखें फैली थीं। कुछेक पतली-पतली टहनियाँ सलाखों को छू रही थीं। सपाट काली, नंगी शाखें जिनके पत्ते झर चुके थे। हवा में टहनियाँ हल्के-हल्के खटखटाती, जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चबा रहा हो। बायीं तरफ की एक मोटी-सी डाल पर बल्ब के प्रकाश में तीन सलाखों के लंबे साये उभर आये थे···टेढ़े-मेढ़े···धुँधले साये···

जिज्जी की चूड़ियाँ खनकीं। वे उसकी तरफ पीठ किये, सूटकेस पर झुकी कुछ कपड़े तह कर रही थीं। कमर में खोंसा हुआ साड़ी का छोर ढीला हो गया था और गोरी, उजली गर्दन में पड़ी चेन रोशनी में झिल

मिला उठती। उसने कमरे में देखा, कुछ देर पहले की तरह अब उनकी चीज यहाँ-वहाँ नहीं बिखरी थी। कुछ देर बाद वे भी नहीं होंगी।···न उनके आँचल की सरसराहट, न चूड़ियों की खनक, न मीठी हँसी···न प्यार-दुलार···

"ट्रेन आठ बजे आती है, न ?" उसने धीरे से पूछा।

"हाँऽऽ ?"

"जिज्जी !···अब कब आओगी ?" अनजाने ही उसकी आवाज भीग गयी।

उन्होंने एकदम मुड़कर पीछे देखा, "अरे, रो क्यों रही हो ?"

"न···नहीं तो !" उसने आँचल आँखों पर रख लिया।

"तू तो पगली है बिलकुल !···बात-बात पर रो देती है।" उन्होंने लंबी-लंबी अँगुलियों से उसके आँसू पोंछे। फिर बाँहों में लेकर उसका सिर अपने कंधे से टिका लिया और स्नेह से पीठ पर हाथ फेरते हुए, रुक-कर बोलीं, "मैंने देखा, तू अब बहुत अनमनी रहने लगी है।···यह सब ठीक नहीं।···तू नाहक इतना दुख करती है···अभी तेरी उमर ही क्या है !···देख तो, कितनी दुबली हो गयी है !" कुछ क्षण चुप रहीं, फिर कहा, "ऐसे उदास-उदास मत रहना।···जरा हँसा-बोला कर···अच्छा !"

"··········!"

"हाँ करो !"

"हाँऽऽ···!" उसने आँसू रोकने की कोशिश की, लेकिन आँसू थे कि बस चले ही आ रहे थे, जैसे अगर अभी न निकले, तो फिर हमेशा के लिए घुट-घुटकर रह जायेंगे। एक जोर की सिसकी आयी तो उसने दोनों हाथों में उन्हें घेरकर मुँह बिल्कुल उनके गले से सटा लिया···कि आवाज निकले ही नहीं !

"क्या करें उम्मी ! भगवान को यही मंजूर था। अगर आज के दिन···" आवाज भर्रा गयी तो उन्होंने उधर को मुँह फेर लिया।···जरा खाँसकर रुलाई दबानी चाही। फिर सूटकेस की ओर मुड़ीं, दस-दस के कुछ नोट निकाले और उसकी हथेली पर रख कर मुट्ठी बंद कर दी, "ये रख लो।"

"मैं क्या···करूँगी···जिज्जी !" उम्मी ने अटककर कहा।

"जो तुम्हारे जी में आये, सो करना।" उन्होंने उसके माथे पर बिखरे बाल सँवार दिये···फिर भीगी-सी आवाज में कहा, "उम्मी ! माँ का ध्यान रखना और हर हफ्ते मुझे चिट्ठी लिख दिया करना। अच्छा !"

उसने सिर हिलाया।

वे आँसुओं में हँसकर बोलीं, "हाँ करो।"

वह चाहते हुए भी नहीं मुस्करा पायी।

"शैल तो साढ़े सात बजे तक राह देखती रही कि मझली चाची आती होंगी।" छोटी चाची सामने पानदान रखे, पान पर कत्था लगाती हुई बोलीं, "फिर खुद मिलने चलीं, पर हमीं ने कहा कि अगर उस घर मिलने जाओगी, तो गाड़ी नहीं मिलेगी। बड़ी पछताती-पछताती गयी। सब इसी सोच में कि आखिर बात क्या है ! तभी अनिल ने आ के बताया कि राजू जीने में गिर पड़ा है।"

"दुल्हिन ! बिदाई के बखत लल्ला को टीका भी न कर सके।" बरामदे में बैठी हुई मझली चाची ने दुखी स्वर में इतने जोर से कहा कि पिछले कमरे में लेटी शैल की माँ के सुन लेने में शक-शुबहे की गुंजाइश न रहे।

"अब क्या किया जाय छोटी जीजी।" छोटी चाची ने एक लंबी साँस ली, "शाम को राजू बहू-रानी के संग ऐसा हँसता-खेलता आया था। किसे पता था कि बेचारे को अभी अलफ बदी है।" फिर चौके की ओर मुँह करके बोलीं, "खाना खा लिया उम्मी ? ···ये बिन्नो बाई बैठी हैं।"

उम्मी ने चौंककर परोसी हुई थाली की ओर देखा। दस मिनट से यों ही अकेली, चुपचाप आँखों में आँसू भरे बैठी थी। जिज्जी के जाते समय इतनी रुलायी आयी···बड़ी मुश्किल से होंठ काट-काटकर आँसू रोके। उनके जाने पर उसका ज्यादा रोना चाची को अच्छा न लगता—

"बिन्नो! तमाखू ले लो।" चाची खंभे से टिकी बैठी महरी से कह रही थीं।

"दुल्हिन ! जे बच्चे सैतान तो इने हैं कि क्या कहें।" मझली चाची

पान खाकर ऊपर से थोड़ी सुपारी फाँकती हुई वोलीं, "राजू को देखो, मजाल है कि छन भर सांत वैठ जाय।···दिन-भर ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर ···सरग उठाये फिरता है। तीन-तीन सीढ़ियाँ इकट्ठे फलाँग रहा था··· अव गिरे न तो क्या हो!"

"अरे जिज्जी! वच्चे तो सभी शैतान होते हैं।" छोटी चाची ने कहा, "अव वो तो होनी थी, सो हो गयी। मैंने सुना, तो मेरा तो जी धक् से रह गया। मैं अभी विन्नो को लिवा के चलूंगी। जरा देख तो लूं, वरना रात-भर मेरी आँख न लगेगी।" स्वर में विह्वलता आ गयी, "देखो तो, नन्हा-सा वच्चा और एकदम जीने से गिरना···!"

उम्मी ने किसी तरह एक-दो कौर निगल कर पानी पिया और उठ खड़ी हुई।

"पहले वह ढहढहाया, तो मैं तो समझी दुल्हिन की छत पर धरा कोई गमला गिरा है···" कहते-कहते सहसा मझली चाची रुकीं, फिर दायीं तरफ मेज पर रखे वादामी पैकेट की ओर संकेत करते हुए कहा, "दुल्हिन! जे कोई कपड़ा लिया है क्या?"

उम्मी वाहर निकलते-निकलते ठिठकी। छोटी चाची ने जिज्जी के जाने से पहले वहीं वैठे हुए दोनों चीजें देखी थीं। साड़ी वीना ऊपर ले गयी थी, चैस्टर वहीं रखा था।

"उम्मी के लिए चैस्टर लिया है, मझली जीजी! ···देखो तो ठीक है?"

"एल्लो दुल्हिन! तुम भी गजव करती हो!" मझली चाची ने चौंक कर कहा, "कम से कम कहला तो देतीं। हमने आज शाम ही उनसे कहा था कि चैस्टर के लिए उम्दा डेढ़ गज कपड़ा लेते आयें। कहीं वो ले आये हों, तो कटा कपड़ा जाने वापिस हो कि न हो···।"

"क्या करें जीजी! सर्दी खूव पड़ने लगी है, कहाँ तक टालते? दर्जी ऐसा है कि दस चक्कर लगवाये विना एक रूमाल भी नहीं सिलता, सो अव तो तै किया है कि रेडीमेड कपड़े ही खरीदा करेंगे। उन्हें तो दम मारने की फ़ुर्सत नहीं मिलती, दर्जी के यहाँ धरना कौन दे!—उम्मी खाना खा लिया वेटी?" □

लेडी-किलर

दिसम्बर की ठंडी खुशनुमा शाम। सुनसान-सी सड़क पर पेड़ों के नीचे अँधेरा गाढ़ा होता जा रहा था। आसमान की हल्की नीलाहट में कहीं-कहीं तारे चमकने लगे थे। नीला ड्राइंगरूम में खिड़की के सामने खड़ी थी, चुपचाप, कुछ सोचती-सी। बीच-बीच में टूट-टूटकर दूर कहीं लाउड-स्पीकर में किसी फिल्मी गीत की कड़ियाँ हवा की लहरों पर सरसराती आ जाती। तेज़ी से आती हुई एक कार मोड़ पर घूमी और हेड लाइट्स की रोशनी में सामने बँगले के गेट पर लगी नेम-प्लेट क्षण-भर को चमक उठी, दूसरे ही क्षण अँधेरा पहिले से भी गहरा हो गया। हवा का ठंडा झोंका बारीक गर्द का हल्का-सा आभास लिए आया और बालों की एक घुंघराली लट नीला के माथे पर आ गिरी। उसने लम्बी-लम्बी अँगुलियों से उसे सँवार लिया।

सहसा दरवाजे पर चप्पलें घिसटाकर चलने की प्रभा की जानी-पहचानी आहट सुनाई दी और बड़े-बड़े रंग-बिरंगे फूलोंवाले परदे के बीच उसका मुस्कराता हुआ चेहरा झाँका।

"आओ।" नीला मुस्कराती हुई मुड़ी।

प्रभा अन्दर आ गयी। वह लाल-नीले रंग के बड़े-बड़े चौखाने का चेस्टर पहने थी। गले में दुपट्टा दुहरा लिपटा हुआ था—"अरे, यहाँ अकेली खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो?"—नीला के दोनों हाथ उसने थाम लिए।

"कुछ नहीं। ऐसे ही।"

"आज यूनिवर्सिटी क्यों नहीं गयी?"

"गयी तो थी।"

"झूठ।"—उसने नीला के गाल पर हल्की-सी चपत लगा दी।—"मैंने तेरे डिपार्टमेंट में तेरा क्लास देखा था। तू थी ही नहीं।"

"तुम एक-डेढ़ बजे के करीब गयी होगी। फोर्थ पीरियड मैंने कट कर दिया था।"

प्रभा ने आँखें मटकायीं—"क्यों?...जरा हम भी सुनें?"

"यों ही! कुछ मूड नहीं था आज।"—नीला उसका हाथ पकड़े-पकड़े सोफे की तरफ बढ़ी।

"हाँ भई, लिट्रेचर वाले तो मूड के गुलाम होते हैं।" प्रभा बैठ गयी।

"चाय पियोगी प्रभा? रामू को बुलाती हूँ।"

"ऊँ हूँ, रहने दो। अभी पीकर ही आ रही हूँ।" उसने दोनों हाथ घुटनों पर बाँध लिए और पीछे टिक गयी। फिर जरा कलाई घुमा कर एक निगाह घड़ी पर डाली, बोली, "नीला डियर! पिक्चर चलोगी?"

"कौन-सी?"

"कोई-सी भी!"

नीला उसके बराबर बैठ गयी, कहा, "फिर कभी चलना प्रभा! मम्मी से पूछा नहीं है!"

"अच्छा, जरा सिविल लाइन्स चलो। मुझे युनिवर्सल में एक काम है।"

"क्या काम है?" नीला ने उसकी ओर देखा।

"कुछ बुक्स देखनी हैं।"

"आज रहने दे प्रभा!" नीला ने एक जम्हाई ली—"कल चलेंगे।"

प्रभा जरा कौतूहल-भरे स्वर में बोली, "बहुत बोर फील कर रही हो

आज तुम ! बात क्या है ?" फिर तनिक रुककर आहिस्ता से कहा, "नो लेटर फ्रॉम मंजुल ?"

नीला चुप रही।

"या तो रिप्लाई मिलता ही नहीं, और अगर मिलता भी है तो निगेटिव में।"—प्रभा मुस्कराई, "किसी खास जगह जाना है तुम्हें या कोई आने वाला है ?"

"मेरे एक फ्रेंड आ रहे हैं।"

"रहे हैं ? प्रभा चौंक पड़ी।"

"रहे हैं।"

"अरे वाह !" प्रभा सीधी होकर बैठ गयी, "मल ब्वॉय फ्रेंड ?"

" 'रहे' वर्ड किस जेन्डर के लिए यूज होता है ?

"च: च: च:···तुम तो नाराज हो गयीं नीली डार्लिंग ? मैं तो सिम्पली पूछ रही थी।" फिर जरा रुककर कहा, "कौन है ?"

"मेरा एक क्लासफेलो है। बहुत ब्रिलियेंट है।"

"नाम क्या है ?"

"राजीव ! ···राजीव साहनी !"

"नाम तो बड़ा रोमैंटिक है।" फिर एकदम चौंककर बोली; "अरे, यही तो नहीं, जिसकी एक कॉपी मैंने एक बार तुम्हारे पास देखी थी ?"

"हाँ, वही है।"

"राइटिंग तो ए-वन थी उसकी। बिल्कुल मोती-से अक्षर !"

"ब्रेन भी ए-वन है। बी०ए० में और लास्ट ईयर एम० ए० प्रीवियस में टॉप किया था उसने।"

"यहाँ रहना कहाँ है ?"

"हॉस्टल में। एम० एस० एल० हॉस्टल। बहुत रिजर्व है। दो सालों से कन्टीन्यूअसली उसे एस्थेटिक सेंस की प्राइज मिल रही है हॉस्टल में।"

"अच्छा, मगर यह सब तुम्हें बताया किसने है ? उसी ने ?" प्रभा एक चटखारा लेकर बोली।

"अरे नहीं।" नीला झेंप-सी गयी। "उसके शहर की एक लड़की यहाँ डब्ल्यू० एच० में है, वही बतला रही थी।"

"भई वाह, बड़ी बातें होती हैं लड़कियों में उसकी !" नीला की ओर झुककर बड़े राजदाराना लहजे में प्रभा बोली, "लेडी-किलर है क्या ?"

सहसा मडगार्ड खड़खड़ाता हुआ एक रिक्शा बाहर पोर्टिको में रुका। नीला उठकर दरवाजे पर आ गयी। आसमानी रंग का सूट और उसी से मैच करती टाई लगाये एक युवक खट्-खट् करता हुआ बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। उसके हाथों में एक फाइल थी।

"नमस्ते।" दोनों हाथ जोड़कर मुस्कराकर उसने कहा।

"नमस्ते !···आइए···आइए।"

प्रभा उन्हें देखकर उठ खड़ी हुई।

"ये हैं मेरी फेंड प्रभा; एम० ए० फाइनल इकानॉमिक्स में हैं।"

प्रभा ने हाथ जोड़ दिये। उसके होंठ सिकुड़े हुए थे।

ताला खोलकर राजीव कमरे में घुसा और अन्दर से उसने सिटकनी चढ़ा ली। कुछ क्षण वह खामोश खड़ा रहा। कमरे में हल्का अँधेरा था। सामने दायें कोने में मेज पर रक्खी रेडियम डायल की घड़ी की सुइयाँ और अंक चमक रहे थे और घड़ी की टिक्-टिक् उसे साफ सुनाई दे रही थी। सामने की खिड़की खुली हुई थी। हाफ कर्टेन के ऊपर से आकाश दिखाई दे रहा था—गहरा, नीला आकाश और धुँधले-धुँधले चमकते हुए तारे ! बगल में बायीं तरफ मेज पर रक्खे स्टोव से स्प्रिट की हल्की-सी गंध आ रही थी। नीचे सड़क पर खड़-खड़ धड़-धड़ करता हुआ ट्रक निकला। पीछे कॉरीडोर में किसी के जूतों की खट्-खट् सुनाई दी और सीटी में बजती कोई फिल्मी धुन।

राजीव ने हाथ बढ़ाकर स्विच ऑन कर दिया। ऊपर लटकता हुआ बल्ब भक् से जल उठा। उसने एक सरसरी निगाह कमरे में डाली। दायीं तरफ बिछी चारपाई पर किनारों पर दुहरी काली लकीरों वाला बेड-कवर, आगे बड़ी-सी टेबल और उस पर रक्खे रैक में सजी हुयी किताबें, कुर्सी पर डनलप कुशन, सामने खिड़की के नीचे नीला कवर चढ़ा दीवार से सटा सोफे का बड़ा पीस, उसके सामने रक्खी छोटी-सी गोल टेबल,

जिसके टेबल क्लॉथ के चारों कोने नीचे फर्श पर बिछे कालीन को करीब-करीब छूते हुए, बायीं तरफ वार्डरोब और उसके आगे ड्रेसिंग टेबल, चारों दीवारों पर माउंट कराये हुए विभिन्न फोटो ग्रुप और मेज के निकट मेंटलपीस पर रक्खा एक चित्र जिसमें एक सांवला युवक विस्मय का भाव चेहरे पर लिये अँगुलियों के सहारे अर्धोन्मीलित नेत्रोंवाली चांदनी—अति गोरी, आरूपवती युवती का चिबुक ऊपर उठाए हुए।

राजीव छोटे-छोटे कदम रखता हुआ ड्रेसिंग टेबल के शीशे के सामने आ खड़ा हुआ; बढ़िया सिला हुआ सूट, पतली-पतली लकीरोंवाली टाई, बिल्कुल झक् सफेद कमीज···वह स्टूल पर बैठ गया···एकदम दुबला-पतला शरीर, रंग इतना सांवला जिसे आसानी से काला कहा जा सके; उसने एक हथेली के सहारे मुँह टिकाकर शीशे में झांका; भद्दी, काली अँगुलियां, लम्बोतरा चेहरा, फैले नथुनों वाली लंबी, बेढंगी नाक; छोटी-छोटी आँखें, मोटे-मोटे होंठ और खूब उभरी हुई गालों की हड्डियां।

"यह थे तुम्हारे प्रिंस चार्मिंग ?"

नीला ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप हाथ की फाइल के पन्ने उलटती रही।

"भई, बोर कर दिया तुमने।" प्रभा चौथी-पांचवीं बार बोली, "इतनी तारीफ की, ऐसा प्यारा-सा नाम बताया, खामखाह मैंने सोचा, कोई अच्छा-खासा हैंडसम लड़का होगा, लेकिन जब देखा, तो···वही मसल हुई कि खोदा पहाड़ और···।"

नीला पूर्ववत् चुप रही।

"बाइ द वे नीली डार्लिंग, एक बात तो बताओ।" प्रभा ने जैसे कुछ सोचकर कहा।

"क्या ?" नीला ने बड़ी-बड़ी पलकें ऊपर उठाकर उसे देखा।

"इनसे तुम्हारी रियली फ्रेंडशिप है···या सिर्फ नोट्स के लिए लिफ्ट दी है, प्लीज डोंट माइंड !"

नीला जरा मुस्करायी, "तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"मेरे ख्याल में तो दूसरी बात ही सही है, और कोई हर्ज भी नहीं है इसमें। एक टॉपर के नोट्स काफी वेल्यूएबिल होते हैं। फिर मंजुल के होते हुए···"

नीला ने घूरकर उसकी तरफ देखा। प्रभा मुस्कराकर चुप हो गयी। हवा की एक लहर अंदर आयी। पर्दे जरा हिलकर रह गये। नीला ने हल्के से बालों पर अँगुलियाँ फिरायीं और एक ढीला रिबन बाँधने लगी। नेल-पॉलिश्ड बड़े-बड़े नाखूनोंवाली अँगुलियाँ धीरे-धीरे उठती-गिरतीं।

"मैं तो सोचती हूँ नीला"—प्रभा बोली, "कि जो लोग ऑर्डिनरी दिखते हैं, उन्हें नाम भी वैसे ही रखना चाहिए। अब यही लेडी-किलर हैं।" वह मुस्करा दी—"अच्छा-खासा नाम स्पॉयल कर रक्खा है। उन्हें कोई ऐसा नाम सजेस्ट कर दो, जो उन पर सूट करे। जैसे, रामकिशन, दीनानाथ···"

"या कालीचरन!" नीला एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके पतले-पतले होंठों के कोने बड़े आकर्षक ढंग से सिकुड़े हुए थे और सफेद साड़ी का पल्ला सरक जाने से 'वी-कट' ब्लाउज में गले के नीचे का उजलापन झलक रहा था।

प्रभा भी हँसने लगी, "हाँ, यह नाम तो बिल्कुल सोने में सुहागा है।"

नीला गंभीर हो गयी—"अच्छा, चुप रहो। यों किसी का मजाक उड़ाते शर्म नहीं आती? इसमें किसी का क्या दोष! जैसा भगवान् ने बनाया है, वैसे हैं।" फिर जरा मुस्करा दी, बोली, "अपना नाम क्या बहुत अच्छा समझती हो?"

प्रभा इठलायी, "नाम अच्छा न सही, हम तो अच्छे हैं!"

"वाह! क्या कहना है!"

"सच! इस वीक में दो डाइ हुए हैं हम पै!"—प्रभा दबी हँसी हँस दी! "बहुत रिलायबिल न्यूज सर्विस है। एक वो है, मीना का कजिन··· क्या नाम है उसका?"

"सतीश सिन्हा!" नीला ने मुस्कराकर कहा।

"नहीं, सतीश नहीं! उससे यंगर जो है।···सतीश तो उन लड़कों में

है, जिन्होंने यू आउट लाइफ किसी लड़की को छेड़ा नहीं, किसी का पीछा नहीं किया, किसी को आँख···"

"डोंट टॉक रबिश !" नीला ने आँखें तरेरी—"सतीश से छोटा सरल है, लेकिन वह तो फ्लर्ट दिखता है एकदम !"

"बिल्कुल !" प्रभा हँस दी—"उन हजरत ने एक नज्म लिखी है मुझ पर—'ओ कजरारी आँखों वाली, तेरी चाल बड़ी मतवाली'।"

कम्बल ओढ़े सोफे पर अधलेटा राजीव मुँह में सिगरेट दबाये एक किताब पढ़ रहा था। खिड़की में रक्खे टेबिललैम्प के शेड के दोनों ओर मुड़ा हुआ अखबार रक्खा था, ताकि चार इंच का गोलाकार प्रकाश केवल किताब पर पड़े। कमरे में राजीव का प्रिय धुँधला-धुँधला अँधेरा छाया हुआ था। उसके मुँह से निकलते धुएँ के छल्ले धीरे-धीरे टेढ़े-मेढ़े होकर ऊपर उठते हुए अँधेरे में खोते जा रहे थे।

"नी···ला···!"

नीला को उसने पहली बार पिछले वर्ष क्लास में देखा था। वह भी उसकी सादगी, उसकी गंभीरता से प्रभावित हो गया था। दूसरी लड़कियों के समान वह हमेशा सिर से सिर जोड़े बातें नहीं करती थी। चुपचाप बैठी रहती, अपने में खोयी हुई। गोरी, दुबली-पतली, लम्बी-सी, मासूम चेहरा, पतले-पतले होंठ, शांत आँखें, जो कैसी भी कौतुक-भरी बात सुनकर चंचल न हों। उत्कृष्ट कशीदाकारी किये हुए बगुले के पंख-से दमकते उसके सफेद कपड़े, दाहिने हाथ में पाँच-छह चूड़ियाँ, बायीं कलाई में नाइलॉन के काले स्ट्रैप में बँधी घड़ी, रिबन में गुँथी एक चोटी वक्ष पर झूलती, संतुलित चाल।

राजीव को उसे देखना बहुत अच्छा लगता। देखता तो आँखों में न जाने कितने सपने तैरने लगते, मन में बहुत मधुरता भर जाती। वह क्लास में तीसरी-चौथी लाइन में बैठता और नीला की निगाह बचाकर उसे देखा करता। जब पीरियड खत्म हो जाते और नीला क्लास से निकलकर कुछ दूर खड़ी अपनी 'हिलमैन' की तरफ बढ़ती, तो किसी

खंभे की आड़ से उसकी निगाहें नीला का पीछा करतीं—पतली-नाजुक कमर, सीधी-संतुलित चाल।

जी में आता कि कभी कोई उसे भी देखता। वह क्लास में देर से आता और किसी की नजरें उसके बड़ी-बड़ी आँखों और तीखे नक्शवाले-धूप से लाल हुए गोरे चेहरे पर जम जातीं। वह लापरवाही से साइकिल चलाता, हल्की हवा में उसके घुंघराले बालों की एक लट माथे पर झूमती और तेजी से आती हुई कोई लड़की एक बार मुड़कर उसकी ओर देख लेती···लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ, और जब हुआ तब···

डिपार्टमेंट लायब्रेरी से एक किताब इशू करवा कर लौटते समय एक अन्य लड़की के साथ नीला पर उसकी निगाह पड़ी। सहसा उस लड़की ने कुछ कहा और नीला ने मुड़कर उसकी तरफ देखा, चार-पाँच सेकेंड···

न राजीव के दिल की धड़कन बढ़ी, न उसके हाथ-पैरों में सनसनी हुई। बस, एक ही ख्याल उसके दिमाग पर छाया हुआ था कि उस लड़की ने नीला से कहा क्या ! शायद यही कि इस लड़के ने बी० ए० में टॉप किया है।

"जरा रुकिए। मैं चाय के लिए कह कर आयी।"

राजीव एकदम उठ खड़ा हुआ—"नहीं-नहीं, रहने दीजिए।···मुझे एक जरूरी काम है। अब चलता हूं।"

"काम आपको कब नहीं रहता ! आंधी की तरह आते हैं और तूफान की तरह चले जाते हैं।" नीला मुस्करा दी, "बैठिए, पाँच मिनट से ज्यादा नहीं लगेंगे।"

वह दरवाजे तक आयी कि पोर्टिको की सीढ़ियों पर प्रभा दिखाई दी।

"आओ नीला डियर ! तुम्हें जरा घुमा लायें।" उसने वहीं से चिल्लाकर कहा।

"सॉरी !"

"क्यों ? आज भी राजीव साहनी उर्फ बाबू कालीचरन जी आनेवाले हैं ?" प्रभा हँस दी।

"शिः शिः…"

"शी शी क्या ? तेरा ही सु[illegible] है ।"

खुले दरवाजे पर खट्खट् हुई ।

"कम इन !"—राजीव ने कुर्सी पर [illegible]
घुमायी ।

एक हाथ से पर्दा किनारे करता हुआ [illegible]
युवक अंदर घुसा ।

"आप मि० राजीव साहनी हैं न ?"

"जी हां !" राजीव उठ खड़ा हुआ ।

"मुझे मंजुल कहते हैं ।" [illegible]
एक मैसेज लेकर आया हूं आपके लिए ।" [illegible]
मुस्कान थी ।

"ओह !…बैठिए-बैठिए…[illegible]"

मंजुल सोफे पर बैठ गया । राजीव ने [illegible]
से चाय मँगायी ।

"जी हाँ ! आजकल वर्मा शैल में हूँ।" मंजुल ने एक सिगरेट सुलगायी। पतली, लम्बी आर्टिस्टिक अँगुलियाँ, एक अँगुली में नीले नग की चमकती हुई अँगूठी, "नीलू ने ईवनिंग में आपको टी पर बुलायाहै। उसकी कुछ फ्रेंड्स भी आ रही हैं, प्रभा, विभा···इ···र···रा···"—वह अटक गया, मुस्कुराया, "मुझे तो कुछेक लड़कियों के नाम भी ठीक से याद नहीं रहते···इतने सिमिलर होते हैं।

"जी···ई···!"—राजीव ने समर्थन किया।

"यहाँ म्योर हॉस्टल में मैं अपने एक फ्रेंड के यंगर ब्रदर के पास आया था। नीलू ने मुझे आपका नम्बर बतला ही दिया था।" वह बदस्तूर मुस्कराये जा रहा था, "मैंने सोचा, आपसे भी मिलता चलूँ।"

"इट इज सो गुड ऑफ यू !"

उसने एक निगाह कलाई की घड़ी पर डाली, "अच्छा अब मैं चलूँगा।"—वह उठ खड़ा हुआ, "शाम को आप आ रहे हैं न ?"

"श्योर, श्योर !"

राजीव उसके पीछे दरवाजे तक आया। बगल की मेज से ताला उठाकर कमरा बंद करने लगा, "ठहरिए ! मैं आपको नीचे तक छोड़ देता हूँ।"

"ओह, दैट्स ऑल राइट ! बेकार तकलीफ क्यों करते हैं !"—जरा रुककर बोला, "थैंक्स फ़ॉर द टी !"

"प्लीज डोंट बी सो फॉर्मल !"

मंजुल ने मुस्कराते हुए हाथ मिलाया और चलने के लिए मुड़ा—"ओ० के०, सो लाँग।"

राजीव कॉरीडोर में खंभे पर हाथ टेककर खड़ा हो गया। नीचे पोर्टिको में नीला की कार खड़ी थी। मंजुल एक हाथ पेंट की जेब में डाले खट्खट् करता हुआ सीढ़ियाँ उतरकर नीचे पहुँचा। कार स्टार्ट हुई और गर्द का हल्का-सा गुबार पीछे छोड़कर गेट से बाहर निकल गयी।

पास ही कुर्सी डालकर बैठेसाइड-पार्टनर मेहता ने पूछा, "कौन साहब थे ?"

"फ्रेंड हैं एक !"

"भड़ाक्-से दरवाजा खोलकर विशन निकला और बड़ी ऊँची आवाज़ मे एक फिल्मी गीत गाने लगा।

"अबे साले ! एक ट्यून मे हर गाना फिट कर देता है !"—मेहता चिल्लाया।

लेकिन वह टीका-टिप्पणी से बेखबर गाये जा रहा था—"मुहब्बत ऐसी धड़कन है जो धड़कायी नही जाती···"

ठंडी रात। चाँदनी और सन्नाटा। पढने मे तबीयत ही नही लगती। अनजानी, अनचाही उदासी मन मे भरती-सी जाती है।···किताब की काली-काली लकीरों पर फिसलती धुँधली नजर। ऐश-ट्रे मे बुझने-बुझने को होती सिगरेट से उठती धुएँ की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ।···कितनी अच्छी है यह खामोशी···यह हल्का अँधेरा···

भड़ाम्-से सड़क पर कोई गिरा···शायद साइकिल टकराने की कँपकँपाती झनझनाहट···होगा, मुझे क्या ! ···राजीव ने कसमसाकर पहलू बदला···कुछ दिनों पहले कोई नॉविल पढ़ते हुए समर्पण देखा था : उसको जो जीवन में आयी और चली गयी···तब वह मन-ही-मन कितना हँसा था। ये राइटर्स भी कितने फनी होते हैं···लेकिन अगर वह लिखता होता, तो समर्पण मे शायद आज कुछ ऐसा ही लिखता···लेकिन नीला उसके जीवन में कहाँ आयी थी, वह खुद ही उसके जीवन में आ गया था···और अब खुद ही अलग हुआ जा रहा है···अच्छा किया, उसके यहाँ नही गया, अब कभी भी नहीं जाना है···लेकिन नीला के सामीप्य का इतना मोह क्यों ? अभी तक वह उससे क्यों मिलता-जुलता रहा ? शायद उसका प्रेम पाने की आशा मे ? ···प्रेम···जाने-पहचाने सपनों की अनंत शृंखलाएँ पलकों मे तैरने लगी···शाम को, जब पेड़ो की कतारो के साये धीरे-धीरे फैलते जा रहे हों, किसी सुनसान-सी सडक पर वे बाँहों मे बाँहे डालकर टहलें, रात के हल्के सन्नाटे मे वह नीला को गेट पर 'गुडनाइट' कहे और उसकी पतली-पतली अँगुलियाँ होंठों से छुआ ले···मं···जुल ! ···सपनों का ताना-बाना खट्-से टूट गया।···शायद वे दोनो कही घूम

रहे होंगे या नाइट-शो देखकर देर से वापस लौटे हों···या लॉन में खड़े हों···किसी पेड़ के नीचे।···वह नीला की रेशमी बाँहों में सिमटा होगा··· नीला के गले के निचले, उजले भाग पर रक्खे उसके पतले-पतले होंठ, नीला के गर्म होंठ उसके माथे को छूते हुए, उसके गोरे चेहरे पर फिसलती नीला की नर्म, काँपती अँगुलियाँ।···अगर नीला उससे प्रेम भी करने लगती, तो···नीला के साथ चलता वह···दुबला-पतला, बेढंगा-सा।··· नीला की अंगूर-सी गोरी कमर पर रक्खे छोटी, काली अँगुलियों वाले उसके हाथ, नीला के होंठों के फड़कते कोनों पर जमे उसके मोटे-मोटे होंठ, नीला की अँगुलियाँ उसके गालों की उभरी हड्डियों पर फिसलतीं··· राजीव का मन बड़ी कड़वाहट से भर उठा। यदि नीला उससे प्रेम करने भी लगती, तो क्या ऐसी स्थिति स्वयं उससे स्वीकार की जा सकती थी··· फिर नीला के समीप अपना साधारण-सा अस्तित्व बनाये रखने का आग्रह क्यों ?···सिर्फ इसीलिए कि नीला के पास रहना, उसे देखना उसे अच्छा लगता था, पर यह अभी तक नहीं सोचा कि नीला को उसे देखकर कैसा लगता होगा ! शायद अच्छा नहीं, नहीं तो वह नाम···

कालीचरन !

बुरा तो नहीं, अच्छा-खासा नाम है। मामूली आदमी का मामूली-सा नाम। एक दुबला-पतला, काला-सा लड़का। नाम कालीचरन।···क्या हर्ज है ? कोई हर्ज नहीं !···जब बदसूरत माँ नहीं रही, तो उसका दिया खूबसूरत नाम क्यों बाकी रहे···

उसने लैटर-पैड उठाया और सेक्रेटरी, बोर्ड ऑफ हाइस्कूल ऐंड इंटरमीडियट एजूकेशन के नाम एप्लीकेशन लिखने लगा—

"सर,

रिस्पेक्टफुली आइ बेग टू से, दैट आइ वांट टु चेंज माई नेम। माई हाइस्कूल रोल नंबर वाज···"

लेकिन वह सहसा रुक गया···यह क्या बचपना है ?···पढ़ने-लिखने की बजाय ऐसी बेवकूफी की हरकतें ?···लव-रोमांस पोयट्स का काम है।···ही इज ए मैन ऑफ एम्बीशंस···उसे अपना कैरियर बनाना है। अच्छा किया, नीला-वीला से मिलना-जुलना छोड़ दिया। खामखाह आने-

जाने मे इतना टाइम वेस्ट होता था। फिर वह उसके नोट्स, हैल्प बुक्स वगैरह दो-दो हफ्ते तक रखे रहती थी···सैलफिश कही की ! हूँ ! ··· बस, अब उसे खूब मन लगाकर पढ़ना है···नो लव, नो ड्रीम्स !

लेकिन मन में रह-रहकर कसकती एक टीस···□

मेहमान

मोती घर के बाहर चबूतरे पर टहल रहा था। चबूतरे से बिल्कुल सटी हुई काली कार खड़ी हुई थी। इसकी छत पर लोहे की छड़ों के दायरे में एक बेडिंग और दो बड़े-बड़े सूटकेस रखे थे। कार पर गर्द की मोटी तह जमी थी। मोती जब हाथ सीने पर बाँधे, चबूतरे के दोनों किनारों पर मुड़ता, तो निगाह कार पर से फिसलती हुई सड़क पर पहुँच जाती। उसकी आँखों में चमक थी, और पैरों में तेजी। पड़ोसी कुंदन अपने घर से निकला, तो मोती इधर-उधर देखकर जरा खाँसा, फिर गर्मजोशी से आवाज लगाई, "क्यों, भई कुंदन, क्या हाल-चाल है ?"

"बढ़िया है।···तुम सुनाओ।" कुंदन ने हुक्के की तरह मुट्ठी में दबी सिगरेट का गहरा कश लिया। "ये कार कब खरीदी ?"

मोती ने जोर का ठहाका लगाया, जैसे कुंदन ने कोई बहुत अच्छा मजाक किया हो। फिर कहा, "अपना एक जिगरी दोस्त आया है। बम्बई में है आजकल। एक फर्म में असिस्टेंट मैनेजर है। तनखाह है दो हजार महीना। बढ़िया फ्लैट ले रक्खा है।···बहुत मानता है अपने को।"

"क्यों न हो भई, क्यों न हो ?" कुंदन ने धुएँ के दो छल्ले बनाए, फिर कलाई मोड़कर घड़ी देखी। "अच्छा यार, चलूँ। जरा बैंक में काम है।"

मोती ने चबूतरे पर दो-तीन चक्कर और लगाए, फिर अंदर घुस गया। उसके बरामदे में कदम रखते ही, कौशल ने गुसलखाने का दरवाजा खोला।

"बड़ी जल्दी नहा लिया ?···पानी ठंडा तो नहीं हुआ था ?" मोती ने मुस्कराकर पूछा।

"नहीं, यार," तौलिए के सूखे कोने से गले का पिछला हिस्सा पोंछते हुए, वह बोला "मुझे तो बहुत जल्दी तैयार होने की आदत पड़ गई है। ···बम्बई में शुरू-शुरू में कार नहीं थी न, और ठीक साढ़े आठ की लोकल पकड़नी होती थी। सोकर उठते थे आठ बजे। लेकिन ठीक पन्द्रह मिनट में शेविंग, नहाना-धोना, चाय-नाश्ता, सब हो जाता था।" उसने मुड़कर आलमारी की ओर इशारा किया। "जरा वो शीशी तो देना।"

मोती ने लपक कर शीशी उठाई, फिर सहसा झेंपकर कहा, "इसमें तो सरसों का तेल है।···ठहरो, मैं···"

'अरे, दे यार। अपन को सब चलता है।" कौशल ने शीशी लेकर, बड़े इतमीनान से एक हथेली की अंजली में पतली धार गिराई। बाजार के तेलों में बस, खुशबू ही तो मिलती है सूँघने को। बाल अलग सफेद हो जाते हैं।" वह हल्की-हल्की उँगलियों से सिर पर मालिश-सी करने लगा।

तब तक मोती ने कंघी एक बार कमीज के निचले हिस्से से रगड़कर, उसकी ओर बढ़ा दी।

"बाबूजी, अम्मा पूछती है, खाना परोसें ?" राजू ने रसोई-घर की दहलीज पर से पूछा।

"हाँ-हाँ, बिल्कुल।" मोती बोला, और जल्दी-जल्दी उस तरफ बढ़ गया।

कौशल ने इधर-उधर गर्दन मोड़ कर, आइने में अपना चेहरा देखा, एक झटका देकर कंघी में से नन्ही-नन्ही बूँदियाँ टपकाईं, फिर आँगन के तार पर भीगी तौलिया फैलाने लगा।

"पापा!" नीरू ने गोद का कॉमिक बंद कर दिया। 'अब बाकी

सामान भी रखवाइए न।···कहते थे, सुबह चलेंगे और अब दोपहर हो गई।"

"हाँ-हाँ, बेटे, चलते हैं।" कौशल आस्तीनें मोड़ते उसके नजदीक चारपाई पर बैठ गया। फिर पूछा, "तुमने नहा लिया ?"

"हूँ, हमने तो तभी नहा लिया था, मम्मी के साथ।"

"मम्मी कहाँ है ? ऊपर ?" कौशल उसके बालों में उलझा एक धागा निकालने लगा।

"नहीं, वो तो है···" उसने रसोई की ओर इशारा किया, "उनके पास !"

कौशल ने मुस्कराते हुए पूछा, "किनके ?"

"राजू-कुंती की मदुर···" उसने हंसकर कह दिया।

"उनसे कहने के लिए तुम्हें क्या बोला था, कल रात ?" कौशल ने उसकी बंद मुट्ठी हाथ में ले ली, और उँगलियाँ एक-एक करके खोलने लगा।

उसने शर्मीली हँसी हँस दी। कहा, "आंटी !" फिर तनिक रुककर, धीरे से बोली, "पापा, ये कैसा घर है ? यहाँ न तो···"

"अच्छा, बेटे, खड़े हो," आँगन में गिलास लिए आते मोती को देख, उसने बीच में जोर से टोक दिया, "ये दरी निकाल लें।"

"नहीं-नहीं, रहने दो। बैठक से मेज-कुर्सियाँ उठा लेता हूँ," मोती ने कुछ हड़बड़ा कर जल्दी-जल्दी कहा। फिर मुस्कराकर आगे जोड़ दिया, "तुम सब को तो वैसी ही आदत है न ?"

"अरे, छोड़, यार !" कौशल ने दरी खींच ली, और उसे एक बार जोर से फटकारा।

"ठहरो, ठहरो···मैं···" मोती ने फुर्ती से झुककर, गिलास फर्श पर रख दिये।

तब तक कौशल ने दरी बिछा ली, और अटैची से पैकेट और माचिस निकाली। फिर खुला हुआ पैकेट मोती की तरफ बढ़ाया। मोती ने संकोच-भरी हँसी हँसते हुए, एक सिगरेट निकालकर मुँह में दबाई, फिर कौशल के हाथ से माचिस ले, एक तीली जलाई, और उसकी सिगरेट सुलगाने के

लिए तत्परता से झुक गया।···

"सुबह लखनऊ में चलते वक्त ही मैंने इला से कहा था, कि रात मोती के यहाँ ही ठहरेंगे।···लेकिन यहाँ तुम्हारे आफिस में जब तुम्हारा पता पूछा, तो जानते हो, पहले क्या जवाब मिला ?"

"क्या ?" मोती का हाथ थाली में ही रुक गया, और निगाह कौशल पर जम गई।

"कहने लगे, 'जनाब, उनका ट्रांसफर तो दो महीने पहले मेरठ हो गया।' मैं नाउम्मीद होकर चलने लगा। लेकिन तभी एक दूसरे साहब ने बरामदे से साइकिल उतारते हुए कहा, 'आप मोतीलाल को पूछ रहे हैं, या मोतीचंद को?' मैंने कहा कि मोतीलाल को। तो बोले, 'वे तो यहीं हैं।'··· फिर उन्होंने घर बताने को एक चपरासी मेरे साथ बिठा दिया।"

"अगर मुझे खबर होती, कि तुम आने वाले हो, तो मैं रात तक आफिस में ही बैठा रहता।" मोती जरा हँस कर बोला, "बल्कि जब बाहर से तुमने पुकारा भी न, तो मुझे सपने में भी ख्याल न था, कि ये तुम हो सकते हो।···सब्जी दो न।" उसने कौशल की थाली की ओर इशारा किया।

"ये तो हमेशा आपका जिक्र करते रहते थे," कुसुम सकोच-भरी हँसी हँस, कटोरे में शोरबा डालते हुए बोली, "जब आपकी शादी का निमंत्रण आया, तो जाने की पूरी तैयारी कर चुके थे, छुट्टी ले ली थी। लेकिन ठीक एक दिन पहले बुखार ने आ पकड़ा।···बहन जी, ये रायता तो लीजिए।"

"अरे भाभी, उस वक्त तो इतनी कोफ्त हुई, जिसकी हद नहीं। रोज सुबह स्टेशन पर आदमी दौड़ाता था। आखिरी दिन तो इसकी हुलिया बताकर उससे यही कह दिया था, कि बस जैसे ही दिखाई दे, घसीटकर ले आना, बात-वात करने की जरूरत नहीं !" कहकर कौशल ने एक ठहाका लगाया।

कुसुम और मोती भी हँस दिए।

कुछ देर चुप्पी रही। फिर निवाले के साथ प्याज का एक टुकड़ा मुँह में रखते हुए कौशल बोला, "भाभी जी, कभी बम्बई का प्रोग्राम बनाइए न। सब घुमा देंगे आप लोगों को, जुहू, मैरिन ड्राइव, चौपाटी, कमला

नेहरू पार्क, हैंगिंग गार्डन, तारापुर वाला एक्वेरियम, अजंता, एलोरा, सब।"

कुसुम सकुचाई-सी हँस दी।

"क्यों, क्या दिक्कत है, मोती?" कौशल ने मोती की ओर देखा। "अगले महीने पन्द्रह-बीस दिन की छुट्टी ले लो।···वक्त बहुत अच्छा कटेगा।"

"अभी तो बच्चों के स्कूल चल रहे हैं न।···बेकार की गैरहाजिरी हो जाएगी।' मोती ने नर्मी से कहा।

"अरे, हाँ।" कौशल चौंका, फिर कुछ सोचते हुए बोला, "तो इम्तिहान के बाद सही।···शायद एप्रिल में खत्म होंगे। क्यों, राजू?"

"जी।" उसने तुरंत सहमतिसूचक सिर हिलाया।

"बस, तो फिर तय रहा।···क्यों, भाभी जी, ठीक है न?"

"अरे, आप खाइए तो।" कुसुम ने हँसकर, उसके रुके हुए हाथ की ओर इशारा किया।

इला मुस्कराकर बोली, "अगर बातें हों, तो खाने की ओर इनका ध्यान कभी नहीं रहता।"

"भई, इन लोगों से छः साल के बाद मिल रहा हूँ, और वह भी चंद घंटों के लिए।"

"और यहाँ कल से प्रार्थना कर रहे हैं, कि कम-से-कम तीन-चार दिन तो रुको।" मोती ने इसरार किया। "आखिर ऐसी भी क्या जल्दी है?"

कुसुम बोली, "सच, भाई साहब, अच्छा नहीं लगता, कि रात को आए और सुबह चल दिए।···बहन जी, आप ही इनसे कहिए न!"

इला मुस्कराकर रह गई।

"मेरे हाथ की बात होती न, तो मैं महीने-भर यहीं पड़ा रहता।" कौशल ने हँसते हुए चम्मच खीर के प्लेट में रखी। "लेकिन एक बात मेरे दिमाग में आ रही है।"

"क्या?" मोती ने सवालिया निगाहों से उसकी ओर देखा। होंठों के कोने किसी मजाक की संभावना से मुस्कान में हल्के-से खिंच गए।

"यही कि दोस्ती को रिश्तेदारी में बदल लिया जाए।" वह कुसुम की

ओर देखते हुए हँसा। "क्यों, भाभी जी, अपने राजू के लिए नीरू का रिश्ता आपको मजूर है?"

"मंजूर है, मजूर है।" मोती खिलखिलाकर हँस पडा।

कुसुम मुस्कराई। "हमारे तो भाग जाग उठें।"

"भई, ऐसे नही? पहले लडके वालो की तरह जरा नखरे तो कीजिए।" और कौशल ने ठहाका रोक, पानी का गिलास मुँह से लगा लिया।

इला ने कुसुम और मोती की निगाह बचा कर, क्षण-भर कौशल की ओर देखा। फिर अनखनाकर बोली, "जल्दी कीजिए। बारह बज चुके हैं।"

"हाँ-हाँ, बस चल ही रहे है," नजर मिली, तो कौशल ने कुछ सकपका कर कहा।···

कुसुम दीवार से पीठ टिकाए, पीढ़े पर निढाल-सी बैठी थी। मोती सामने खरहरी चारपाई पर सिर के नीचे एक बाँह लगाए लेटा था। बरामदे की तीनो दीवारो की सफेदी मटमैली हो गई थी, और कोनों मे जगह-जगह लंबी दरारें थी। अदर वाले दरवाजे के ऊपर पुराने-से, जंग लगे स्टैंड मे बल्ब था, जिस पर गर्द की मोटी तह जमी थी। किवाडों की वार्निश कभी की उड चुकी थी। उनकी चूलें हिलने लगी थीं, और निचले हिस्से की दो पट्टियाँ टूटी थीं। दाईं दीवार पर लंबे-से बाँस को दो रस्सियों से बाँधकर अलगनी बना दी गई थी, जिस पर कुछ मैले-से कपड़े लटके थे। सामने की दीवार पर टेढ़ी-मेढ़ी कील के सहारे एक पुराना कैलेंडर झूल रहा था। उसका कागज बिल्कुल पीला पड़ चुका था, और तारीखों के पन्ने फट चुके थे। फर्श पर दरी बिछी थी। पास ही जूठी थालियों का ढेर था, जिस पर मक्खियाँ भनभना रही थी।

देखते-देखते मोती ने गहरी साँस ली, फिर करवट बदलने लगा।

"कौशल बाबू का स्वभाव बहुत अच्छा है। तनिक भी घमड नहीं।" कुसुम बोली, और हल्की-हल्की उँगलियों से माथा सहलाने लगी

"वो हमेशा से ही ऐसा है," मोती ने कहा।

"नीरू की माँ ज़रूर गुरूर वाली है।"

उसने मुड़कर देखा।" क्यों ?···कुछ बात हुई क्या ?"

"नहीं बात-बात क्या होती ?···लेकिन मालूम तो पड़ जाता है।" और कुसुम ने दोनों हथेलियाँ मुंह के आगे कर, जमुहाई ली।

"भई, बड़े आदमी की बेटी है, और बड़े घर में ब्याही गई है।"

कुछ देर चुप्पी रही।

फिर कुसुम ने पूछा, "कौशल बाबू से तुम्हारी खूब दोस्ती थी ?"

"दोस्ती···बस, यों समझ लो, कि दो देह एक जान थे।" वह आवेश में उठकर बैठ गया। "भाई, बड़े सवेरे मोटर-साइकिल घड़घड़ाता हुआ मेरे कमरे पर पहुँच जाता था, और फिर हम आधी रात को ही अलग होते थे···उठना-बैठना, पढ़ना-लिखना, घूमना-फिरना सब साथ-साथ।···जिस दिन उसके यहाँ पहुँच जाऊँ, उसकी माँ खाना खिलाए बिना नहीं आने देती थीं। ऐसा मानती थीं मुझे जैसे उन्हीं का सगा बेटा होऊँ।" उसने एक हाथ की बँधी मुट्ठी पर ठोड़ी टिका ली थी, और खोया-खोया-सा सामने देखने लगा था।

आँगन के आधे हिस्से में धूप फैली हुई थी। एक दीवार से सटे रक्खे चार-छः साबित और अधटूटे गमलों के पौधे हवा में धीरे-धीरे हिल रहे थे। ऊपर छत की मुंडेर पर एक कौवा सहसा 'काँव-काँव' करने लगा था।

राजू हाथ में गुलेल लिए अंदर घुसा, तो मोती ने इशारे से उसे बुलाया, फिर उसके पास आने पर, घुड़ककर कहा, "सुबह नाश्ते के वक्त तू मरयुक्खों की तरह एक बार में दो-दो मिठाइयाँ क्यों खा रहा था ?··· मिठाई कभी देखने को नहीं मिलती थी क्या ?···वे लोग अपने मन में क्या सोचते होंगे ?"

राजू ने अपराधी की तरह गर्दन झुका ली, और पाँव के अँगूठे से फर्श कुरेदने लगा।

"जाने भी दो।···बच्चे हैं।" कुसुम धीरे से बोली। मोती की निगाह बचाकर राजू को जाने का इशारा किया। फिर कुछ देर की खामोशी के बाद बोली, "भई, मेरा तो बुरी तरह बदन टूट रहा है। सिर में अलग दर्द है। रात को अच्छी तरह सो नहीं सकी। सुबह भी जल्दी ही उठना पड़ा।"

"हां-हां,तो लेट जाओ। आराम करो।···खाना तो बना ही होगा?"

'हां, सभी कुछ है—पूरियां, सूखी और रसेदार तरकारी···"

"बस, ठीक है। रात को खाने का झंझट मत करना।"

वह चारपाई से उठने लगा, तो कुसुम ने आंचल की गांठ खोलकर एक सिक्का निकाला। "मैं चौका-बर्तन करती हूँ। तुम तब तक एम्प्रो की एक टिकिया ला दो।"

"अच्छा!" मोती ने हाथ बढ़ाकर सिक्का ले लिया। फिर आंगन की ओर बढ़ते-बढ़ते, सहसा ठिठक कर कहा, "महरी तुमने बेकार हटा दी।·· ऐसा कौन-सा खर्च था?"

"क्या करती?" इस महँगाई में···"आगे की बात गहरी सांस में टूट गई।

मोती कुछ कहने को हुआ,फिर सहसा सिर झटककर, धीरे-धीरे बाहर चबूतरे पर आ गया।

गली में इस किनारे से उस किनारे तक धूप फैली हुई थी। अभी दोपहर भी नहीं ढली थी, और पूरा दिन सामने था। उसे उत्साह में दफ्तर से छुट्टी ले लेने पर पछतावा होने लगा। आखिर मालूम तो था ही कि वे लोग जल्दी ही चले जाएँगे, फिर छुट्टी की क्या तुक थी? एक कैजुअल भी बेकार गई, और बोरियत हुई, सो अलग। उसने चबूतरे के नीचे धूल-भरी सड़क पर कार के टायरों के अधमिटे निशान खोजे। फिर खाँसते हुए इधर-उधर देखने लगा।□

काउंटर

पहलू बदलकर घड़ी की तरफ देखता हूँ, नौ बज चुके हैं···और वीर अभी तक नहीं आये। उन्हें अभी से बहुत पहले आ जाना चाहिए था, अपने नियम के अनुसार। दोपहर का खाना वह जरूर देर से खाते हैं—दो बजे के लगभग, लेकिन रात को अगर खाने के लिए मना नहीं करते, तो सात-साढ़े सात तक आ जाते हैं···और आज उन्होंने मना नहीं किया। मुझे अक्सर ताज्जुब होता है कि दोपहर और रात के खाने के बीच वह केवल पाँच घण्टों का अन्तर रखते हैं। लंच टाइम प्रायः उन्हीं पर खत्म होता है और डिनर टाइम उन्हीं से शुरू, जैसे वह बीच की वह कड़ी हैं, जो यहाँ की दो लम्बी जंजीरों को जोड़ती है···।

"एक छोटा पॉट चाय, दो वेजीटेबिल कटलेट, दो हाफफ्राई एग।" वेटर निःशब्द आकर बायीं ओर खड़ा हो गया है। पंखे की हलकी हवा में फड़फड़ाते कार्बन को ठीक से देखता हूँ और बिल बनाने लगता हूँ। काली रेशमी डोर मेरी हथेली में लिपट गयी है। उसका एक छोर पेन्सिल के ऊपरी सिरे से जुड़ा है और दूसरा बिल-बुक से। बिल में ऊपर की तरफ

बड़े अक्षरों में रेस्तराँ का नाम छपा है, उससे छोटे अक्षरों में पता और दायें कोने पर लाल स्याही में जैसे एक ललकार अंकित है—'टर्म्स कैश,' मानो ये दो लाल शब्द नहीं, लाल आँखें हों—प्रोप्राइटर की ! सुर्ख चेहरा और आँखों पर चढ़ा काला चश्मा सामने तैर जाता है…।

वेटर ने छोटी अलमारी पर से सौंफ और दाँत साफ करने की पतली-पतली सीकों से भरी प्लेट उठा ली है। काउण्टर से बिल लेकर प्लेट में रखा है और तेज कदमों से टेबिल नम्बर सात की ओर बढ़ गया है।

एक जमुहाई लेकर इधर-उधर देखता हूँ…केबिन भरा है, बड़ी टेबिल भरी है, छोटी टेबिलों में बस एक खाली है। नहीं, एक टेबिल नहीं, चार कुरसियाँ खाली हैं, क्योंकि कुरसियों के भरने पर ही टेबिल भरती है…। योगेश का कहा हुआ कुछ याद आता है।

एक बड़ा-सा कमरा, जिसकी दीवारों का निचला डेढ़ फुट का हिस्सा काली वार्निश से रँगा है, दीवार के शेष भाग पर हलका आसमानी रंग है और जहाँ ये दोनों हिस्से मिलते हैं,वहाँ एक छह इंच चौड़ी लाल पट्टी लहरा रही है। बायें कोने पर काउण्टर है। काउण्टर के आगे शीशे के स्प्रिंगदार किवाड़ और बगल में प्रोप्राइटर के कमरे का छोटा-सा दरवाजा जिसपर काला परदा पड़ा है। काउण्टर के नजदीक जालीदार छोटी आलमारी है और पीछे की जरा-सी खाली जगह में तख्तनुमा पटरे पर कुछ नियमित ग्राहकों के घी के डिब्बे रखे हैं—एलमोनियम और डालडा के छोटे-बड़े डिब्बे। एकाध के अलावा सब में छोटे-छोटे ताले लगे हैं। उन्हीं के पास सॉस और शरबत की कुछ खाली बोतलें रखी हैं। एक कोने में टोस्ट-कटर है। सामने एक के बाद एक दो टेबिलें हैं और फिर केबिन। दरवाजे की ऊँचाई के बराबर लकड़ी का फ्रेम है, जिसके तीनों हिस्सों को छूता हुआ परदा लहरा रहा है। केबिन के बायीं ओर सामने की दीवार पर चौकोर आइने के साथ-साथ वाश-बेसिन है और उससे काफी ऊपर बड़ी-सी गोल घड़ी लगी है। घण्टे और मिनट की सुइयों की गति के क्षण पकड़ में नहीं आते, लेकिन सेकेण्ड की लम्बी सुई लगातार घूमती हुई दिखाई दे रही है। घड़ी में पेण्डुलम नहीं है, चलने की भी कोई आवाज नहीं होती। बस, देखते-देखते सुइयाँ खामोशी से सरक जाती हैं।

"गुड ईवनिंग !" शीशे का दरवाजा खुलने के साथ-साथ सुनाई देता है और पंखे की हवा में उड़ते बाल सँभालते हुए योगेश दिखाई देते हैं—मुँह में सिगरेट और मुसकराहट साथ-साथ।

"गुड ईवनिंग !" उनकी मुसकान मेरे चेहरे पर भी प्रतिबिम्बित होती है। हर नियमित ग्राहक के साथ हमारे संबंध अच्छे होने चाहिए, यह प्रोप्राइटर की नीति है, लेकिन ऐसे ग्राहक दो-तीन ही हैं, जो न केवल ठीक से बात करते हैं, वरन् अक्सर दुआसलाम में पहल भी कर लेते हैं।

योगेश खम्भों के दूसरी ओर चले गये हैं···। ये दो खम्भे काउण्टर से गज-भर हटकर हैं—गोल, दीवारों की तरह तीन रंगों में रंगे हुए। सामनेवाली दीवार पर छोटा-सा दरवाजा है—किचन में जाने के लिए, जिसमें बीचोंबीच स्प्रिंगदार तख्ते लगे हैं। जब भी कोई बेटर अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर जाता है, 'खट्' की हलकी आवाज होती है। इस दरवाजे के दोनों ओर शीशे के पल्लों वाली दो बड़ी-बड़ी अलमारियाँ हैं, जिनमें क्रॉकरी, नैपकिन, शरबत, विमटो, लेमन, सॉस आदि की भरी बोतलें लगी हैं। बीच में छह कुरसियों वाली लम्बी टेबिल है और बाकी कोनों में चार छोटी टेबिलें। सब मिलाकर आठ टेबिलें और छत्तीस कुरसियाँ। यहाँ एक साथ छत्तीस आदमी बैठ सकते हैं।···३६ ! इस संख्या के सम्बन्ध में मैं अकसर सोचता हूँ।

"मैनेजर सा'ब, चाबी दीजिए।"

मेरी बायीं ओर बेटर खड़ा है। नजर उठाने की जरूरत नहीं। सफेद जूतों से शेख को पहचान रहा हूँ। उस अवज्ञामयी मुसकान को भी देख रहा हूँ, जो उसके वक्र होंठों पर खेल रही होगी। काउण्टर के सिरे पर उसकी खुली हथेली फैली है—चौड़ी, सख्त हथेली, जो अक्सर नन्हे के गाल पर बज उठती है। बीच उँगली में चाँदी का मोटा, बड़ा-सा छल्ला है···।

"केबिन में मेम सा'ब नैपकिन माँगती हैं। सॉस की बोतल भी खलास है।"

जहाँ देख रहा हूँ, वहीं देखते हुए दायें हाथ से ड्राअर खोलता हूँ, चाबियों का गुच्छा उठाता हूँ और ड्राअर बन्द करते हुए बायें हाथ से गुच्छा काउण्टर पर फिसला देता हूँ। शीशे पर हलकी खनक होती है।

टेबिल नम्बर दो पर भी खनक हो रही है, लेकिन इससे कुछ दूसरी किस्म की। जब वहाँ कप सॉसर पर टिकाया जाता है, तब खनक कुछ चिकनी-सी होती है--नर्म और नाजुक। अगर इसे रूपायित किया जा सके, तो यह बँधी मुट्ठी की दरारों के बीच से, नन्ही तड़पती मछली की तरह फिसल-फिसल जायेगी। जब कटलेट को काटते हुए छुरी-काँटे सहसा प्लेट से टकरा जाते हैं, तो यह खनक कुछ चौंकी और चकित-सी होती है ···कि अरे, मैं कैसे हो गयी! और जब पानी-भरा जग गिलास से टकरा जाता है, तो यह खनक कुछ तीखी और अक्खड़-सी होती है, जैसे कह रही हो···

"यह पान···" नीमू ने कहा है···या कह रहा है, समझ में नहीं आता। कोई बात शुरू करने से पहले उसके होंठ हिलने लगते हैं और बात खत्म होने के बाद भी कुछ-कुछ हिलते ही रहते हैं, मानो गला सूख गया हो, या बात कहते-कहते वह सहसा भूल गया हो कि क्या कह रहा था।

उसने सिगरेट के पैकेट की चमकती पन्नी में लिपटा पान काउण्टर पर खिसका दिया है। उसकी बूढ़ी, काँपती उँगलियाँ मुझे कुछ टेढ़ी-सी लगती हैं। वह कुछ ठिठका है कि शायद मैं कुछ कहूँ, लेकिन मैं कुछ नहीं कहता। कहूँ भी तो क्या? मैं कह ही क्या सकता हूँ!

"बैऽऽऽऽ रऽऽऽ रऽऽऽ"—टेबिल नम्बर छह पर पुकार लगती है।

चौंककर ड्राअर के बगल में लगे बटन पर उँगली रखता हूँ। अन्दर किचन में घण्टी की आवाज सुनाई देती है। इस टेबिल पर सब यूनिवर्सिटी के लड़के हैं—मुक्त और निर्द्वन्द्व। घण्टे-भर से सिगरेट, कॉफी और कह-कहों का दौर चल रहा है। अभी कोई बिगड़ उठे, तो मुसीबत हो जाये। ···अनचाहे ही साल-भर पहले की घटना याद आ जाती है, जब आधी क्रॉकरी चौपट हो गयी थी।

"देखो, अमीन से बोलो कि नम्बर छह पर ठीक से सर्व करे,"—सामने से निकलते नन्हे को रोककर कहता हूँ। पहलू बदलकर काउण्टर पर कुहनियाँ टिकाते हुए निगाह पेपरवेट के बगल में पड़े पैकेट पर पड़ती है। इसमें एक सिगरेट बची है। मुझे याद आता है। सोचता हूँ, पी लूँ?··· हाँऽऽ, पी ली जाये···। लेकिन अभी या कुछ देर बाद?···अच्छा, टेबिल

नम्बर छह के खाली होने पर पीऊँगा, मन ही मन कहता हूँ।···अपने आपसे इस तरह की शर्तें हमेशा लगती हैं—सिगरेट पीने के लिए, पान खाने के लिए, चाय पीने के लिए···फलाँ टेबिल खाली हो, फलाँ कस्टमर पानी का गिलास खत्म कर ले, वेसिन पर झुके-झुके कोई आइने में अपना मुँह देख ले···।

शर्त पूरी हो जाती है, तो पन्नी की गोली बनाकर वास्केट में फेंकते हुए पान मुँह में रखता हूँ, सिगरेट होंठों में दबाता हूँ, फिर सामने ही देखते हुए ड्राअर से स्टाम्प-पैड पर रखी माचिस निकालता हूँ···। इन पाँचों ड्राअरों में मेरी उँगलियाँ देख लेती हैं।

दो हाथ लम्बा और एक हाथ चौड़ा, हलकी गोलाई लिये यह काउंटर···शीशम की चिकनी लकड़ी, ऊपर काला मोटा काँच, जिसमें पंखे का गोल आकार तेजी से घूम रहा है। सुबह से दोपहर तक, दोपहर से शाम तक, शाम से रात तक···जिन्दगी का कितना बड़ा हिस्सा यहाँ बैठे-बैठे गुजार दिया है—बिल बनाते हुए, हिसाब-किताब करते हुए, लोगों को खाते-पीते देखते हुए। पैर सुन्न हो जाते हैं, पीठ अकड़ जाती है, कुहनियाँ दर्द करने लगती हैं···। बचपन में घंटे-भर बेंच पर खड़ा कर दिया जाना दिन-भर रुलाने के लिए काफी था, लेकिन अब लगता है कि बैठा दिया जाना भी छोटी सजा नहीं है।

बिल-बुक में दबे कार्बन का एक कोना हवा में सरसरा रहा है। पेंसिल की लाल, रेशमी डोर भी सिहर उठी है—किसी मधुर पुलक में। जब यह डोर नहीं थी, तो पेंसिल को बिल-बुक में दबाने की बजाय कभी चिकने काउंटर पर बीचोंबीच रख देता था, एक तरफ बिल-बुक, दूसरी ओर ऐश-ट्रे और बीच में पेंसिल हवा की लहरों पर फिसला करती थी—यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ, मगर एक बार सहसा दूसरी ओर मुड़ी, गिरी और लम्बी नोक टूट गयी।

शेख अपनी मूँछें उमेठता हुआ आया और चाबियों का गुच्छा प्लेट पर रख गया। इस तरह मूँछें ऐंठना उसकी आदत है, या सिर्फ मेरे ही सामने ऐसा करता है···? इस सवाल के जवाब से बचता हूँ—ऐसे ही और भी कई सवालों की तरह। प्लेट से नोट और रेजगारी उठाकर गिनने लगता

हूँ और मन-ही-मन बिल के अनुपात मे शेख को मिली टिप का अन्दाज लगाता हूँ···। उसने दायी ओर खड़े होकर बड़े अदब से केबिन का परदा खिसकाया है। साडी का सरकता पल्लू सँभालते हुए पहले गोरी युवती निकलती है, पीछे उसका पति ···। शेख खम्भे के निकट खड़े अमीन को आँख मारता है।

कुछ ऐसी ही युवती थी वह भी—गोरी, लम्बी-सी···शॉर्ट वेस्टर पहने थी। दिसम्बर के उस हफ्ते में कन्वोकेशन की वजह से बेहद रश था। नीमू सुबह ही मेरे पास आया था—चेहरे की झुर्रियों मे दर्द की कँपकँपाहट लिये। उसका तपता हाथ मैंने खुद छुआ था, लेकिन बुखार कितना ही तेज क्यों न हो, छुट्टी नही दी जा सकती थी। प्रोप्राइटर का आदेश था। और नीमू ने दिन-भर सर्व किया था—डगमगाते पैरो से, जैसे एड़ियों मे बँधी लोहे की वजनी जंजीर पीछे-पीछे घिसट रही हो, लेकिन पैरो की कँपकँपाहट जब हाथों मे भी आ गयी, तो केबिन का पर्दा हटाकर भरी ट्रे टेबिल पर रखता हुआ वह लड़खड़ाया···ट्रे में जलतरंग-जैसी ध्वनियाँ उभरी थीं··चिकेन-करी और कोफ्ते का गर्म शोरवा, गर्म फ्राई आलू-मटर, पकौड़ी, सलाद और चटनी, पिघला हुआ मक्खन···। युवती रिक्शे मे घर भेज दी गयी थी, लेकिन काउंटर पर घूँसा मारता हुआ पति रुक गया था···और प्रोप्राइटर के आने पर···

नीमू की बारह साल की सर्विस थी, इसलिए निकाला नहीं गया। लेकिन केबिन छिन गया···सबमे छिन गया, जहाँ सबसे ज्यादा टिप मिलती थी···। पहले हर हफ्ते टेबिलें बदलती थी, लेकिन अब फिक्स हो गयीं। शेख के लिए केबिन और टेबिल नम्बर दो, नीमू के लिए तीन और चार, पाँच और छह अमीन को और सात-आठ केवल के लिए। अमीन को शेख ने पटा लिया था, लेकिन नीमू और केवल के सामने खामोशी के अलावा और कोई चारा नही था। केबिन की महीने-भर की टिप तनख्वाह से दुगनी थी और नीमू-केवल की जिम्मेदारियाँ शेख से दुगनी। तनख्वाह बढाने का कोई सवाल ही पैदा नही होना था···। तब मैंने एक डिब्बा लाकर अपने बगल की अलमारी पर रख दिया था—दस इंच ऊँचा, छोटा-सा, टीन डिब्बा, सफेद रंग का, ऊपर लकीर-जैसा छेद था और ढक्कन [illegible]

ताले से बन्द। चारों बेटरों को बुलाकर कह दिया था— 'आज से तुम लोग अपनी-अपनी टिप के पैसे इसी डिब्बे में डालना। रात को तुम सबके सामने ही डिब्बा खुलेगा और पैसे बराबर-बराबर बाँट दिये जायेंगे।"

लेकिन शेख से सूचना पाने पर रात को प्रोप्राइटर बिगड़ उठे थे— "लाहौलविलाकूवत···! आप यहाँ मालिक हैं, या मुलाजिम···? यह इख्तियारे-तकसीम आपको किसने दिया ? गोया कि यह डिब्बा···"

केवल ने जालीदार अलमारी झटके से खोली है, तो डिब्बा कुछ हिल उठा है। ड्राअर से सिगरेट का पैकेट निकालते हुए उधर नजर डालता हूँ। निचले खाने में दो बड़े मर्तबान हैं। एक में पेस्ट्री, बिस्किट, केक वगैरह, दूसरे में दालमोठ, नमकीन दाल। ऊपरी खाने के एक कोने में कटी स्लाइसें हैं, बड़े पानी-भरे जग में मक्खन की टिकियाँ, एक कोने में अंडे, लूज टी का बड़ा-सा लिफाफा। केवल दो अंडे निकालकर अलमारी बन्द करता है, तो डिब्बा फिर हिल उठा है—हलके-से।

नीमू अब बुड्ढा हो गया है। ज्यादा अच्छी तरह काम नहीं कर सकता। प्रोप्राइटर चाहते हैं, कि वह निकल जाये, लेकिन खुद निकालकर तोहमत मोल लेना नहीं चाहते, इसलिए धीरे-धीरे उसके सामने उलझनों के जाल डालते जा रहे हैं···। वह नम्बर चार के पास बेकार खड़ा है। पहले की तरह। टेबिल का काँच साफ है, फिर भी दो बार पोंछ चुका है। ऐश-ट्रे किनारे पर थी, उसे बीचोंबीच खिसका दिया है। नमक और काली मिर्च की शीशियों के छेददार ढक्कन बन्द कर दिये हैं। चारों कुरसियाँ करीने से लगा दी हैं—इस तरह टेबिल के दो पायों के बीच कुरसी के अगले दो पाये घुसे रहें और हाथ सीने पर बाँधे, दीवार का सहारा लिये चुपचाप खड़ा है।

टेबिल नम्बर तीन बिलकुल सामने पड़ती है। दरवाजा खुलते ही गरमियों में हवा का गरम और सर्दियों में सर्द झोंका मुँह पर आकर लगता है। फिर आने-जानेवालों से डिस्टर्ब भी होता रहता है। शायद इसीलिए यह टेबिल कम भरती है। योगेश के अनुसार इस पर बैठना ऐसा ही है, जैसे पिक्चर में सबसे आगे बैठना और ड्रामे में सबसे पीछे। नम्बर चार बिलकुल कोने में पड़ती है, फिर खम्बे और अलमारी के पीछे छिप-सी गयी

है, इसलिए कस्टमर घुसते ही दायीं ओर की दूसरी टेबिलों की ओर बढ़ जाते हैं।

और नीमू बेकार खड़ा है···। कभी वह जब पेमेंट से बचे पैसे लेकर आता है, तो रेजगारी में छोटे सिक्कों की जगह चवन्नी और अठन्नी रख देता हूँ। कभी उसे टिप ज्यादा मिल जाती है, कभी कस्टमर छोटे सिक्कों के लिए वापस भेज देते हैं, कभी अपनी जेब से निकालकर दे देते हैं और कभी जब वे बचे सिक्के जेब के हवाले कर, थोड़ी-सी सौंफ फांकते हुए लापरवाही से उठ खड़े होते हैं, तो मैं अपने को अपराधी महसूस करता हूँ, मानो वह गलती मुझसे हुई हो, जिसकी वजह से उसे पैसे नहीं मिले।··· जब वह काँपते हाथों से खाली प्लेट काउंटर पर रखता है, तो एकाएक एकाउंट-बुक में व्यस्त हो जाता हूँ। वह कुछ क्षण ठिठकता है कि मैं शायद कुछ कहूँ, लेकिन मैं कुछ नहीं कहता···। कहूँ भी तो क्या···? मैं कह ही क्या सकता हूँ!

"मैनेजर सा'ब!"

"क्या है?"

'आज मेख ने मुझे फिर थप मारी है, सा'ब! कहता है—स्साले, टेंटुआ मसक दूँगा!"

"अच्छा, मैं डाँट दूँगा उसे। तुम काम करो अपना। घबराओ मत!" नन्हे को दिलासा देता हूँ, लेकिन गोरे चेहरे पर घबराहट पसीने की बूँदें बनकर उभर रही है, बड़ी-बड़ी आँखों की तरलता में तैर रही है। वह जब भी शिकायत करता है, यही कह देता हूँ···और कुछ नहीं करता। वह भी यह जानता है, मैं भी यह जानता हूँ और इसके बावजूद हम दोनों वही कह देते हैं, जो इसके पहले भी कई बार दुहरा चुके हैं···। एक हाथ में चम्मच सहित घी की कटोरी और दूसरे में चाबी लिये वह टेबिल नम्बर दो की ओर बढ़ा है···। चाबी टेबिल पर रखकर कटोरी उसने नियमित ग्राहक को दिखाई है।

"ठीक है। इसे प्याज डालकर गरम करवाना।"

स्वीकृति में सिर हिलाते हुए नन्हे ने खम्भे के निकट खड़े मेख की ओर देखा है—सहमी हुई निगाह। आज मेख को फिर रूखी रोटी खानी पड़ेगी

ओर नन्हे को चपत ! नन्हे क्या इतना भी नहीं कर सकता कि दिन में दो वार घी ज्यादा निकाल ले और कटोरी कस्टमर को दिखाये विना सीधे किचन में ले जाये···! स्साला···! मेरे सामने से गुजरते हुए नन्हे ठिठका है···किसी ठोस आश्वासन की आशा में, लेकिन मेरे पास ठोस कुछ भी नहीं है। जो कुछ था सव खोखला सावित हुआ है। जो है, उसे सावित करने की भी जरूरत नहीं। उसकी निस्सारता दिन की रोशनी की तरह साफ है—वेपर्द और चमकदार।

शेख यह जानता है। तभी वह वेझिझक मेरे सामने कह सकता है—"हाँ, मैंने इसे झापड़ मारा ! इस वदजात लौंडे ने मुझे माँ की गाली दी थी !"

और मेरे सामने नन्हे की माँ की आकृति आ जाती है···। पहली तारीख को यहीं, काउंटर के सामने खड़ी थी। मैले-कुचैले, छेदोंवाले बुर्के का ऊपरी हिस्सा दिखाई दे रहा था। गोरे चेहरे पर नकाव उठा था, लेकिन आँखों पर गिरा मालूम होता था। वेटे की तनख्वाह लेकर बड़ी हिम्मत करके कहा था, धागे-जैसी महीन आवाज में—"वो अभी नादान है, हुजूर ! नेको-वद का कोई गुमान नहीं···। आप हमारे खैरख्वाह हैं। आप पर खुदा का रहमो-करम हो···! उसका खयाल रखेंगे, तो मैं वेवा, वेसहारा···" और सिसकियों के वीच आवाज टूटने लगी थी।

"कहिए, जनाव ! क्या हाल हैं ?" योगेश ने दरवाजे के हैण्डिल पर हाथ रख कहा है।

"मेहरवानी !" उनकी ओर देखते हुए विनम्र हँसी हँसता हूँ।

वह मुसकराते हुए कदम वाहर वढ़ाते हैं—"ओक्के, गुडनाइट !"

"गुडनाइट !"

ड्राअर से नियमित ग्राहकों का रजिस्टर निकालता हूँ। खोलता हूँ और योगेश के नाम के आगे, आज की तारीख के नीचे सही का निशान लगा देता हूँ। इन्हीं के नाम के नीचे धीर का नाम है···। धीर ! मेरी निगाह सामने घड़ी पर चली जाती है। अभी तक नहीं आये तो अव शायद आयें भी नहीं। दोपहर का खाना दो वजे खाया था···। उस दिन शायद और भी देर हो चुकी थी। हफ्ता-भर हुआ होगा, जव सनसनाती लू में

लाल चेहरा लिये, थके हाथों से दरवाजा ठेलकर अन्दर घुसे थे। शेख बड़ी टेबिल पर बैठे सरदारजी के सामने लस्सी का गिलास रखकर अन्दर खानसामा से गप्पें लड़ाने लगा था। बाकी तीनों वेटर खाना खा रहे थे। मैंने घंटी के बटन पर अँगुली रखी, तो मिनट-भर तख्तों की कोई 'खट' नहीं हुई। फिर दबे गुस्से की तिलमिलाहट आँखों में लिये शेख आया था।

"शोरबेदार सब्जी खत्म है···सूखी सब्जी खत्म है!" धीर को देख उसने बेरुखी से कहा था।

"दाल तो है?" मैंने पूछा था।

"जी हाँ!"

"बस, थोड़े आलू फ़ाइ करवा लो। जल्दी।" फिर धीर की ओर घूमते हुए बोला था, "माफ कीजिएगा, देर हो चुकी है, इसलिए···"

उन्हें ऐसी आशा नहीं थी। जिस कस्टमर ने तीन महीने से पेमेंट न किया हो, उसके प्रति ऐसा सौजन्य! वह एकाएक तरल हो आये थे। रुक-रुककर, धीमी आवाज में बतलाया था कि वह आजकल बड़ी मुसीबत में हैं। ढाई सौ की एक अस्थायी जगह थी। उसी में अपना काम चलाते थे, घर भेजते थे। परमानेंट हो जाने की उम्मीद थी, लेकिन नहीं हुए। दिसम्बर में जवाब मिल गया था। तब से···। कुछ देर खामोशी रही थी। वह काउंटर पर कुहनियाँ टेके, झुके-से खड़े थे। मैं पंखे की एकरस घररघर्र सुनता हुआ, काले काँच में उसका गोल आकार देख रहा था।

"घर में कौन-कौन हैं?"

"माँ हैं, बहन है, छोटा भाई···" फिर कुछ चौंककर कहा था, "मेरा एकाउंट तो काफी हुआ होगा!"

स्वर समतल था—प्रश्न के उतार-चढ़ाव से एकदम रहित, इसलिए समझ नहीं सका कि उनका मतलब क्या है।

"मैं कोशिश करूँगा कि जल्दी ही···" उन्होंने फीकी हँसी का परदा अपने चेहरे पर लटकाया था।

और जैसे उन्हें इस तनाव से उबारने के लिए मैं एकदम कह उठा था, "ठीक है···ठीक है, दैट्स ऑल राइट···!"

लेकिन प्रोप्राइटर ने उसी हफ्ते एकाउंट-बुक देखी थी। फिर आदेश

दिया था, "इनसे कहिए, तीन दिन में पूरा पेमेंट करें, वरना छोड़ दें ! लाहौल विला···"

वह जानते हैं, साल-दो साल में एकाध रेगुलर कस्टमर ऐसा भी मिलता है। शुरू में बरावर एडवान्स देता है, फिर एडवान्स नहीं देता, फिर एकाउंट चलाने लगता है और होते-होते आखिर उसे जवाव दे दिया जाता है। कानूनी कारंवाई के झंझट में कौन पड़े ! सही सौ-डेढ़ सौ की एक चपत !

उन्होंने तीन दिन के लिए कहा था तीन दिन हुए, चार और पाँच और छह···एकाउंट-बुक में दवा हुआ धीर का विल निकालता हूँ, एक सौ सत्ताइस रुपये, ग्यारह आने···आज तक का वैलेन्स···आज विल दे दूँगा और कल से धीर नहीं आयेंगे। रजिस्टर में उनका नाम अपने ऊपर एक लाल लकीर का कफन ओढ़ लेगा।

लम्बी साँस लेता हूँ और सामने देखता हूँ···टेविलों पर छनक और खनखनाहट वातचीत की वारीक, भौंरों-सी भनभनाहट, जैसे तेज कोलाहल को छान दिया गया हो···। तस्तों की 'खट्-खट्', कुरसियों के पीछे खिसकाने की आहट, वेसिन पर पानी की हलकी कलकल···सुवह से दोपहर तक, दोपहर से शाम तक, शाम से रात तक···वस, यही कुछ आवाजें और चलते हुए मुँह···चाहता हूँ कि हर होटल और रेस्तराँ में वाहर वड़े रंग-विरंगे वोर्ड पर वस, आदमी का एक खुला मुँह हो···मुँह, जो जव चलता है, तो माथे के दोनों ओर कुछ नसें उभरती हैं, गालों की खाल के नीचे दाँतों की कतारें चलती हैं और चवाया हुआ कौर गले के उभरे हिस्से को ऊपर-नीचे करता हुआ गायव हो जाता है। दिन-भर यही देखता हूँ—एक नाटक, जिसके प्रारंभ में चरम सीमा होती है और अन्त में शैथिल्य। बुखार का टेम्परेचर नीचे से ऊपर जाता है, लेकिन भूख का टेम्परेचर ऊपर से नीचे आता है। मैं लोगों को उनकी वेशभूषा और व्यक्तित्व से नहीं जानता, पद और प्रतिभा से नहीं जानता, खुराक और खाने के ढंग से जानता हूँ। मेरी नजरें अखवार में छपी किसी की तसवीर का वन्द मुँह खोल देती हैं और माथे के दोनों ओर नसें व गालों की खाल के नीचे वत्तीसी चलते हुए देखती हैं···। रात को घर पर खाना खाने वैठता हूँ,

तो आँखों के सामने सैंकड़ो चलते हुए मुँह आ जाते हैं, बड़े-बड़े भगौने और देगचियाँ, बाँस की टोकरी में चपातियों का ढेर···प्लेटों की लम्बी कतार, जो भरती है, फिर खाली होती है, फिर भरती है, फिर खाली होती है।···और लगता है कि मैं तो खा चुका हूँ, मेरा पेट बुरी तरह भरा है।

घर की याद से वहाँ का नक्शा सामने आ जाता है···। बिल फाड़कर वेटर की ओर बढ़ाते हुए सोचता हूँ, इस बारे में आज ही बात कर लेनी है। इतने दिनों से टाले जा रहा हूँ। कहूँगा—"सर, जिस तनख्वाह पर आठ साल पहले यहाँ ज्वायन किया था, अब उसमें काम चलना बहुत मुश्किल हो गया है। अगर इन्क्रीमेंट मिल सके, तो बड़ी मेहरबानी हो।"

नम्बर आठ पर प्लेट रखकर वेटर पानी लेने चला गया है। नीली कमीज पहने जिस लड़के ने ऑर्डर दिया था, वह अपना हाथ टेबिल के नीचे कर लेता है और बाकी दोनों लड़कों के हाथ नीचे-नीचे ही उससे मिलते हैं। नीली कमीजवाला लड़का इधर-उधर देखता है, फिर प्लेट में बिल के ऊपर एक-एक के तीन नोट रख देता है···। यह सब अक्सर देखता हूँ। एक दोस्त पर्स खोलकर चेंज गिनता है, दूसरा जेब में हाथ डाल लेता है। एक-डेढ़ मिनट तक न रेजगारी की गिनती हो पाती है, न रुपये ढूँढ़े मिलते हैं। आखिर एक की शर्म बिल पर रुपये रखती है, तो दूसरा चौंककर कहता है—"रुको···रुको, आय'म गिविंग !"

वेटर ने प्लेट काउंटर पर खिसकायी है। नोट उठाकर ड्राअर में रखता हूँ। तभी शीशे का दरवाजा खुलता है और धीर अंदर आते हैं। उनके साथ दो व्यक्ति और हैं। एक पैण्ट-बुशर्ट पहने है, दूसरा पायजामा-कुरता। धीर 'हेलो' कहते हुए टेबुल नम्बर छह की ओर बढ़ जाते हैं। उन्होंने वेटर से तीनों के लिए खाना लगाने को कहा है···। कौन हो सकते हैं ये? इन्हें पहले धीर के साथ कभी नहीं देखा। बायीं ओर जरा गरदन झुकाता हूँ। धीर कोने की कुरसी पर, सामने की ओर मुँह किये बैठे हैं। उन्होंने एक पुरानी खाकी कमीज पहन रखी है, दाढ़ी कुछ बढ़ी हुई और बाल बिखरे ढंग से सँवारे हुए। टेबिल पर कुहनियाँ टेके हथेली पर मुँह झुकाये वह चुप हैं—अनमने भाव से नमक की शीशी इधर-उधर घुमाते हुए।

पहलू वदलते हुए सामने घड़ी की ओर देखता हूँ। धीर आदत के अनुसार शायद काफी देर तक वैठेंगे। दोपहरके खाने के समय उन्हें वहुत जल्दी रहती है। अमूमन सभी को जल्दी रहती है। धीर तो ठीक से खाना लगने का भी इन्तजार नहीं करते। खाना लगता जाता है और खाते जाते हैं। एक आँख टेविल पर होती है, एक घड़ी पर। लेकिन रात को वहुत इतमीनान से खाते हैं। लंच के समय वड़ो गहमागहमी होती है, भाग-दौड़ और ऊँची आवाजें, जैसे आँधी आ रही हो। मेरी अँगुली वार-वार वटन पर रहती है, किचन में घंटी वरावर टनटनाती रहती है, लेकिन डिनर के समय ऐसा कुछ नहीं होता। वेटर इतमीनान से सर्व करते हैं, कस्टमर इतमीनान से वैठते हैं···एक आलस-भरी खामोशी, जैसे आँधी थम चुकी हो और साफ खुले आसमान में भेड़ों के नन्हे वच्चों-से सफेद वादल उड़ने लगे हों। लगता है, जैसे लंच एक जोश-भरी नज्म है, कुछ कर गुजरने की उमंग में सोडे की तरह उफनती हुई···और डिनर फिरनी की तरह जमी एक रिवायती गजल है—रूमानी, स्वप्निल वातावरण की सर्जक, सुकून और ठहराव से भरपूर···।

दस वजने को हैं। केविन खाली है। परदा छल्लों की खनक के साथ आधा खुल गया है। उसका निचला हिस्सा वायीं ओर उड़ रहा है—हल्के-हल्के। परदे पर लाल जमीन में सीधी और तिरछी लकीरें हैं—मोटी और रंगविरंगी···दूसरी टेविलें भी खाली हो गयी हैं। वेटरों ने काँच साफ कर दिये हैं। कुरसियाँ ठीक से लगा दी हैं और अन्दर चले गये हैं। वहाँ से वातचीत और हँसी-ठहाकों की आवाजें आ रही हैं। सोचता हूँ, मना कर दूँ, लेकिन उठते-उठते रुक जाता हूँ। किचन में जाना अच्छा नहीं लगता। भट्ठी की तपती हुई आँच और वड़े-वड़े देगचों के वीच काले, नंगे शरीर पर तहमद लगाये, पसीने की धारें वहाता खानसामा, एक कोने में नल के नीचे गन्दी प्लेटों का ढेर, मसालों की तेज गन्ध···

विलों का हिसाव जोड़ लिया है, ड्राअर के रुपये गिन लिए हैं और अव एकाउंट-वुक खोले वैठा हूँ—नियमित ग्राहकों का खाने के अलावा आज का क्रेडिट चढ़ाने के लिए। धीर का विल वना लिया है, दो गेस्ट-मील्स। सोचता हूँ, नीमू को कल के लिए निर्देश दे दूँ। मुझे सुवह फ्लोर

मिल होते हुए आना है। उन लोगों ने कल शाम को आटा भिजवाने के लिए कहा था, मगर अभी तक नहीं भिजवाया। अंडेवाला आए, तो अंडे तीस ही ले, ब्रेड दस और कह दे कि पैसे अगले हफ्ते मिलेंगे। याद करता हूँ कि अभी धीर को बिल दे देना है। फिर प्रोप्राइटर आयें, तो उन्हें बताना है कि बिल दे दिया'''और आज एक जग टूटा है'''और इन्क्रीमेंट'''वह दे सकते हैं, या शायद नहीं ही देंगे। कहेंगे—'यहाँ के लिए एक रेफ्रिजरेटर खरीदने की सोच रहा हूँ। फिलहाल मजबूरी है'''।' तब'''? तब क्या कहूँगा'''? कुछ नहीं'''। कहूँगा भी क्या ! मैं कह ही क्या सकता हूँ !

कुरसियों के पीछे को आहट होती है। धीर ने बेसिन पर हाथ धोये, फिर वहीं कील से लटकते तौलिए से हाथ पोंछ रहे हैं। मुझे अपनी हथेलियाँ पसीजी-सी लगती हैं। काउंटर पर दोनों बिल मेरे सामने हैं—एक, जो बिल-बुक से फाड़ा नहीं गया और दूसरा, जो पेपरवेट तले दबा है। धीर निकट आ गये हैं। उनके दोस्तों ने प्लेट से थोड़ी-थोड़ी सौंफ ली है। धीर ने अनमने ढंग से एक पतली सींक उठायी है। वह सौंफ नहीं खाते। प्लेट काउंटर पर होती है, तो उसे एक ओर खिसका देते हैं। उन्होंने बिल-बुक अपनी ओर घुमा ली है और पेन्सिल अँगुलियों में थामे, बिल पर दस्तखत कर रहे हैं। उनके दोस्त उनके साथ हैं और मैं उनकी ओर देख रहा हूँ। उन्होंने जाने क्या पढ़ा है मेरे चेहरे पर कि उनकी आंखों में किसी आशंका की छाया उतर आयी है। मेरे दिमाग में लगातार यही बात चक्कर काट रही है कि आखिर इन लोगों में क्या बात हुई है। शायद किसी नौकरी के बारे में हो। धीर को नौकरी मिल जायेगी, वह एडवान्स ले लेंगे और यहाँ का पूरा हिसाब चुकता हो जायेगा'''।

शीशे का दरवाजा बन्द होकर खुला है और प्रोप्राइटर तेजी से अपने कमरे में चले गए हैं'''इतनी तेजी से कि मुझे खड़े होने का अवकाश भी नहीं मिला। बस, उनकी एक झलक देखी है। सुर्ख चेहरा और आंखों पर चढ़ा काला चश्मा। कई बार सोच चुका हूँ कि जब उनके आने के वक्त का अन्दाज है, तो सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन गलती हो ही जाती है।

तख्तों के पीछे से इस ओर देखना शेख हट गया है। उसे धीर पसन्द

नहीं। नियमित ग्राहक महीने में जिस दिन अपना विल चुकाते हैं, सभी वेटरों को कुछ-न-कुछ टिप मिल जाता है, लेकिन धीर ने शायद इसे कभी कुछ नहीं दिया। प्रोप्राइटर के कमरे से वातचीत की भनक सुनाई देती है। अन्दाज लगाता हूँ कि धीर को विल न देने पर मेरी शिकायत हो रही होगी…।

शीशे का दरवाजा वन्द है। केविन और सातों टेविलें खाली हैं। काउं-टर के ऊपरवाले पंखे के अलावा वाकी आठों पंखे वन्द हैं। मेरी वायीं ओर का ट्यूव जल रहा है। वाकी तीनों ट्यूव बुझ चुके हैं। काउंटर के काँच पर ट्यूव का अक्स पड़ रहा है। कुछ छण उस ओर देखता हूँ तो आँखें चौंधियाने लगती हैं। वेसिन का नल किसी ने खुला छोड़ दिया है। पानी की पतली धार निःशव्द नीचे गिर रही है। एक नीम-अँधेरा, खामोशी…

"आपको साहव याद फरमाते हैं," शेख ने पीछे से कहा है।

वहुत हल्की 'हूँ' करता हूँ जिसे खुद भी नहीं सुन पाता। मेरा चेहरा विलकुल भावहीन है—निर्वैर और निर्विकार। काउंटर पर विल-वुक है, विल-वुक पर नोटों का वंडल और वंडल पर दो मुट्ठी चेंज। अकसर सोचता हूँ कि मैं क्या हूँ—मैनेजर हूँ, काउंटर-क्लर्क या रिसेप्शनिस्ट…? अगर कोई शुगर-पॉट से रिसेप्शनिस्ट-सी मीठी दो चम्मच चीनी कप में डाले, केतली से व्लैक टी जैसी क्लर्क की कड़वी दिनचर्या और मिल्कपॉट से दूध सार-जैसा मैनेजर का प्रवन्ध-कौशल, तो शायद वह मेरा तरल जीवन हो…। एक नजर सामने घड़ी पर डालता हूँ। फिर कुर्सी के हत्थों पर कुहनियाँ टिकाता हूँ…अव मैं उठ रहा हूँ—तीन घंटे और छत्तीस मिनटों के वाद…३६! इस संख्या के सम्वन्ध में अकसर सोचता हूँ…।

मैंने वेसिन की ओर वढ़कर नल वन्द किया है। पैर सुन्न हो रहे हैं, पीठ अकड़ गयी है, कुहनियाँ दर्द कर रही हैं…नसों में तीखा तनाव, जोड़ में चटख…स्विच ऑफ करता हूँ तो पंखे की एकरस घररघर्र सहसा वीच से कट जाती है। काले काँच में सनसनाता गोल आकार धीरे-धीरे थमने लगता है। आँखों में ट्यूव की चमक अभी भी रेंग रही है। रोशनी की चिकनी लहरों पर नन्हे, उसकी माँ, नीमू, धीर…और स्वयं मेरा चेहरा फिसल-फिसल जाता है…। सामने लम्वी सुई चुपचाप घूमे जा रही है…☐

निगरानी

मैंने घड़ी पर नजर डाली. सात बजने मे आधा मिनट बाकी था। प्रश्नपत्रों के चारों गुलाबी बंडल उठा लिए और उन पर बंधी कागज की पतली चिप्पियाँ फाड़ दीं। फिर उन्हें करीने से लगाते हुए हाल के बिल्कुल किनारे पर आ गया। कोने की इन दो कतारों मे मुझे पर्चे बांटने हैं। कुछ ने कापी के पिछले कवर पर परीक्षार्थियों के लिए नियम पढ लिए हैं। सब ने अपनी-अपनी कापी पर आज का दिन और तारीख लिख ली है, एनरोलमेंट नंबर और रोल नंबर डाल लिया है, विषय का नाम और पर्चे की क्रमसंख्या दर्ज करदी है। किसीने हाशिए के तौर परकापी का किनारा मोड़ दिया है, किसी ने पेंसिल औरस्केल का सहारा लिया है। जिनका हाथ सधा है उन्होंने कुछ नहीं किया। वे लिखते हुए ही बायें सिरे की एक-डेढ इंची जगह खाली छोड़ते जायेंगे।

एकाएक मैंने महसूस किया, जैसे मैं स्टेज पर खड़ा हूँ। आँखों के कितने जोड़े मेरी तरफ थे—छोटे-बड़े, सीधे-तिरछे, कुछ सादे, कुछ काजल लगे। हल्की-सी बेचैनी महसूस हुई। मैंने पर्चों वाला हाथ सामने उठा लिया। राजनीति शास्त्र···समय : तीन घंटे···पूर्णांक : १००···किन्ही पांच

प्रश्नों के उत्तर···सब प्रश्नों के अंक समान हैं। नंबर एक। अरस्तू के वित्त संबंधी विचार क्या थे? संक्षिप्त समीक्षा कीजिए···नंबर दो। रोम के राजनीतिक विचार रोम की संस्थाओं से कहाँ तक प्रभावित हुए हैं?

टन्न से घंटा बजा। दोनों हाथों से दायें और बायें डेस्क पर एक-एक पर्चा रखता हुआ मैं फुर्ती से आगे बढ़ता गया···कागज की सरसराहट और बढ़े हुए आतुर हाथ···कभी अंगूठीवाली अंगुलियाँ, कभी बड़े या छोटे डायल की घड़ी, कभी चूड़ियों की खनक···डेस्क के एक सिरे पर कील से ठुका रोल नंबर का कार्ड···स्याही की दवात···रूमाल, पेन, पेंसिल··· एडमिट कार्ड···संतरा···कुछ पर्चे बच गये थे। उन्हें सामने दीवार से सटी रखी बड़ी मेज के बंडलों में मिला दिया। लोग सर झुकाये सवालों को पढ़ और समझ रहे थे। लिखना शुरू करते-करते अभी पाँच-छह मिनट लग जायेंगे।

"तुमने अपने यहाँ का पेपर देखा?" कपिल ने पूछा।

"नहीं।"

उसने पर्चा मेरी ओर बढ़ाया। भेद-भरे लहजे में कहा, "जानते हो, किसका है?"

मेरा मन हुआ कि उसे बतला कि दूं प्रोफेसर रस्तोगी के ऐसे कितने ही तथाकथित गोपनीय काम मैं करता हूँ, लेकिन वह अपने गुट के अंदर क्या, उसकी सीमा-रेखा पर भी नहीं आता था, इसलिए दबा गया। भोले भाव से पूछा, "चंडीगढ़ का है? डाक्टर ढिल्लन?"

"नहीं, उस्मानियाँ के डाक्टर राव का है।" फिर आहिस्ता से जोड़ा, "मेरे पैंसठ और छियालठ के दो पर्चों से पाँच-पाँच सवाल उतार लिए हैं। बस, सीरियल नंबर की तब्दीली हुई है।"

मैंने गौर से उसके चेहरे की तरफ देखा और भांपने की कोशिश की कि यह जुमला सादा है या मानीभरा—क्योंकि पेपर बनाने का यही ढंग मेरा भी था। अंतर बस यही था कि मैं दो के बजाय पाँच-छह पर्चों को आधार बनाकर उतार लिया करता था। इस तरह एम० ए० का एक पेपर तैयार करने में आधे घंटे से ज्यादा नहीं लगता, जब कि सुनते हैं कि कुछ ईमानदार किस्म के लोग दो-दो दिन लगा देते हैं, क्योंकि प्रश्नपत्र ऐसा बनना चाहिए,

इस इनविजिलेशन का आज पाँचवाँ दिन है। तीन दिन और बाकी हैं…पाँच रोज में इस हाल में कितना वक्त गुजरा? तीन और तीन छह और तीन और नौ बारह और तीन…पंद्रह घंटे! अगर एक मिनट में इस हाल के दो सौ चक्कर लगाये, तो कुल कितने हुए? …एक हजार… माइ गुडनेस! …इतनी देर में कितनी कॉपियाँ निपटा सकता था। उन बंडलों की याद आयी, जो आधे कमरे को घेरे हुए हैं। भागलपुर यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार का तो टेलीग्राम भी आ चुका है। सुनते हैं, कुछ ऐसे नियम बनने वाले हैं कि विलंब के अनुपात से पारिश्रमिक में कटौती होती जायेगी…अगले साल अपने अंडर में किसी तरह दो रिसर्च स्कॉलर लेने चाहिए। काम काफी बढ़ गया है। योगेश को अकेले सब कुछ सँभालना पड़ता है। अब उसका काम भी करवाना चाहिए। आगामी सब [illegible] की नियुक्ति हो जाये। एक तो बनारस के डॉ० मिश्र…मुरादाबाद की जगह मेरा नाम देखते ही बिना थीसिस पढ़े अपनी रिपोर्ट भेज देंगे कि पी० एच० डी० दे दी जाये। दूसरा ? होने को तो सागर के डॉ० सक्सेना हो सकते हैं, लेकिन यह बादशाह [illegible] कि [illegible]। [illegible] एक प्रोफेसर और एक रीडर होना चाहिए।

कपिल हाल के उस तरफ एक-एक डेस्क के पास जाकर कॉपी पर दस्तखत करने लगा था। मैंने भी पेन निकाला और एक [illegible] पहली लाइन के पहले डेस्क पर झुक गया…और [illegible]…रोल नंबर २७।४…

खिड़की के शीशे से छनकर धूप आ रही थी—सुनहरी। [illegible] नहीं। नीचे कुछ कारें और स्कूटर थे, [illegible]। [illegible]

लोग आ-जा रहे थे। आखिरी कश लेने के वाद सिगरेट चौखट से रगड़कर बुझायी और नीचे फेंक दी। मुड़ा और पिछली तरफ से निःशब्द आगे आने लगा। यकायक एक कापी का पन्ना पलट गया, तो एक स्लिप फिसलकर फर्श पर आ गिरी…विनय !…मेरे ही ट्यूटोरियल में था। सामने पड़ने पर हमेशा सलाम ठोकता है…ठिठककर देखा, स्लिप पर वारीक-वारीक अक्षरों में जैसे नक्काशी की गई थी। दायीं ओर जूतों की आहट हुई। एक-एक डेस्क खोजभरी निगाह से देखता चौधरी चला आ रहा था—टीचिंग की वनिस्वत इनविजिलेशन को ज्यादासीरियसली लेता है न ! मैंने एक पैर स्लिप पर रख लिया और लापरवाही के भाव से पीछे दीवार से टिक गया। कपिल के आगे निकल जाने पर झुका और स्लिप उठाकर जेव में डाल ली। दरवाजे तक पहुंचा, तो चपरासी ने कहा कि साव, चाय वन गयी है।

कमरे में छह-सात लोग थे। चीफ इनविजिलेटर मेज पर एक थीसिस खोल वैठे थे। वतलाने लगे कि जून तक पाँच देख कर सवमिट करवानी हैं…सीनियर प्रोफेसर थे, विश्वविद्यालय की राजनीति के प्रमुख स्तंभ, इसलिए सव सर झुकाये चुपचाप सुनते रहे।

वाहर निकला, तो ऊपरी हाल की सीढ़ियों से डॉ० मणि उतर रहे थे। सलाम के लिए हाथ उठाया, तो वह वोले, "आप ही की तरफ आ रहा था। एक गुजारिश है…यों कल रात भी आपके यहाँ हाजिर हुआ था, पर आप थे नहीं।"

"कल हम लोग पिक्चर चले गए थे। हुक्म दीजिए, क्या वात है ?"

वह कंधे पर हाथ रख एक कोने में खींच ले गये। कुछ अटपटा-सा लगा। सीनियर रीडर हैं, ऐसी वेतकल्लुफी तो पहले कभी नहीं दिखायी।

"मेरा भतीजा मोहन यहीं पढ़ रहा है…वी० ए० फाइनल में। शायद जानते हों।"

"नाम तो सुना हुआ-सा लगता है।"

"वात यह है कि उसका सेलेक्शन एन०सी०सी० की आफिसर्स ट्रेनिंग यूनिट में हो गया है। आप तो जानते हैं, ट्रेनिंग के वाद सीधे लेफ्टिनेंट की हैसियत से कमीशन मिल जाता है।"

"बड़ी खुशी की बात है।"

"लेकिन मुश्किल यह आ पड़ी है कि उसके लिए ग्रेजुएट होना जरूरी है और इन हजरत ने परसों का पेपर बहुत बिगाड दिया है…एग्जामिनेशन सेक्शन से मालूम पड़ा कि वह आपके पास है। अब अगर आप इनायत करें, तो…"

"डॉक्टर साहब! आपसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी…*यानी आप मुझे* गैर समझते हैं?" मैंने उलाहना दिया, "यह तो बिल्कुल घर की बात है।"

उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथों में दबा लिया, "थैंक्यू! …थैंक्यू बेरी मच!"

"शर्मिंदा मत कीजिए…रौल नंबर क्या है?"

उन्होंने जेब से एक चिट निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दी।

…डेस्क की दो लाइनों के बीच चहलकदमी करते हुए सोचता रहा कि डॉ० मणि के मामा एक्जीक्युटिव काउंसिल के मेंबर और वाइस-चांसलर के गुट के हैं। जब अपनी रीडरशिप का मसला आयेगा, तो मदद मिल जायेगी।

चपरासी उपस्थिति का रजिस्टर लेकर आ गया, तो अपने हस्ताक्षर किये। किसी को प्यास लगी, तो पानी वाले को बुलवा दिया। डेस्क पर पेन की खटखट हुई, तो सप्लीमेंट्री कापी दी। लिस्ट पर रौल नंबर नोट *किया। एक निगाह देखने से मालूम होता था कि लोगों के लिखने की* रफ्तार काफी तेज हो गयी है।

"देखिए, सप्लीमेंट्री कापी जब लें,तभी उसे बांध दीजिए।" कपिल ने एलान किया, "बाद मे एक्स्ट्रा टाइम नहीं दिया जायेगा।"

मेज से टिककर हाथ सीने पर बांध लिए…इस हाल में एक दरवाज़ा है और पंद्रह खिड़कियां, तीन दीवारों पर पांच-पांच। चौथी दीवार में सटाकर गोदरेज की आलमारियां रखी गयी हैं। चालीस ट्यूब हैं, एक-एक दीवार पर पांच, और पांच-पांच करके छत पर चार लाइनें। पंखों की चार कतारें। हर कतार मे छह…हाल मे कुल मिलाकर सत्तर डेस्क हैं। लड़कियां चौंतीस। लड़के छत्तीस। तीन जगह कुर्ता-पायजामा-धोती। बाकी पैंट-कमीज-बुशर्ट। ग्यारह चूड़ीदार-कमीज। एक स्कर्ट। शेष साड़ियां।

नजर आ रहा है कि लिखते समय पल्लू या दुपट्टा बार-बार फिसल जाता है। हर लड़की को हर पाँच मिनट में दो-तीन बार तो सँभालना ही पड़ता होगा। कापीऔर स्याही सोखते के साथ ही एक-एक सेफ्टीपिन भी दी जानी चाहिए या फिर वह काम भी इनविजिलेटर को ही क्यों नहीं सौंप दिया जाता ?

दरवाजे से झाँककर डॉ० सरन ने देखा। पास आये, तो बधाई दी। उन्हें विसकांसिन से पोस्ट-डाक्टरल फैलोशिप मिली है। पूछा, रवानगी कब है ? जवाब मिला, अगस्त के आखिर में। ऐसे लोगों को देखकर अजीब-सा लगता है, जिनमें शादी और बच्चों के बावजूद भी रिसर्च की हिम्मत है। एक हम हैं—पाँच सालों में पी-एच० डी० की थकान भी नहीं उतार पाये।

"आपका बाहर जाने का इरादा नहीं है ?" पूछा गया।

"है क्यों नहीं !"

"तो फिर ?"

"जाऊँगा लेकिन कोई ऐसी फैलोशिप मिले, जिसमें काम न करना पड़े, घूम-फिरकर वापस आ जाऊँ।"

वह स्टेट्स के किसी विश्वविद्यालय के बारे में बतलाने लगे, जहाँ आमतौर से नये लोगों की स्थायी नियुक्तियाँ नहीं होतीं कांट्रैक्ट होता है और उसकी अवधि समाप्त होते-होते कोई-न-कोई नयी शोधकरके दिखानी होती है। इस तरह वास्तविक एकेडेमिक रुचि के लोग ही शिक्षा के क्षेत्र में आते हैं और वातावरण बहुत अच्छा रहता है···आदि-आदि।

एक के बाद एक लगातार तीन जमुहाइयाँ आयीं। अब यहाँ से जाते ही खाना खाकर, सो जाऊँगा। कापियाँ योगेश ही देख लेगा। रिजर्वेशन के बारे में पता लगाने स्टेशन भी वही चला जायेगा। अब भाग-दौड़ की हिम्मत नहीं है···ऊब-ऊबा-सा लड़कों को देखता रहा। इनका क्या होगा ? मेरे जैसे कुछ दुनियादार या अच्छे कांटैक्ट वाले ठीक जगह पा जायेंगे,बीस-पच्चीस रिसर्च में फँस जायेंगे, और बाकी ?···कोई सेल्समैन होगा, कोई टाइपिस्ट, कोई क्लर्क। अगले साल तक इनके चेहरे काफी बदल जायेंगे। दाढ़ी हलकी-सी बढ़ी,आँखों के गिर्द झुर्रियाँ, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई

…अरस्तू के वित्त संबंधी विचारों पर बेचारे चिंतन-मनन करते रहेंगे !

…कुर्सी पीछे खिसकने की आहट हुई। एक साहब उठे। इशारे से बाथरूम जाने की अनुमति माँगी। पान आये, लिस्ट पर रौल नंबर लिखा, फिर बाहर जाने लगे। मन हुआ कि कहूँ, यार, स्लिपें फ्लश में बहाने की जरूरत नहीं। लाओ, मुझे दे दो…पर वे बहुत संजीदा थे। चुनांचे चुप रहा।□

कितना सुन्दर जोड़ा

बंबई सेंट्रल के अहाते में गाड़ी पार्क करके जब जल्दी-जल्दी फॉयर में पहुँचा, तो 'पूछताछ' के सामने रक्खे ब्लैकबोर्ड पर निगाह अपने-आप पड़ गयी—सबसे ऊपर ही एयरकंडीशंड एक्सप्रेस के पैंतालीस मिनट देर से आने की सूचना थी···जैसा व्यग्र जा रहा था, वैसा ही जड़ खड़ा रह गया···अब ?"

बाहर चिलचिलाती धूप देखी, तो देर से सूखते अपने गले का ध्यान आया। स्टाल तक बढ़ा और माथे का पसीना पोंछते हुए एक बोतल कोक हलक में उँडेली। देह के उष्ण काँटों को हिमानी ठंडक ने छुआ, सहलाया ···अब ?

अचानक खयाल आया कि पास के एयरकंडीशंड मार्केट में एक पुराना परिचित है, जो कई बार आने के लिए कह चुका है। सब-वे से होता हुआ स्टेशन के बायें गेट से बाहर निकल आया और एक सिगरेट सुलगाकर पैदल ही तारदेव पहुँचा। संयोग से दोस्त दफ्तर में ही था। उसने अपने फर्म के बने हुए नट-बोल्ट दिखलाये। एक मल्टी-पर्पज स्क्रू-ड्राइवर निकाला,

जिसके लिए स्टेट गवर्नमेंट से ऋण पाने की उम्मीद थी। चाय पी। जब घड़ी पर मेरी निगाह गयी, तो चालीस मिनट हो चुके थे। मैंने हड़बड़ाकर विदा माँगी। उसने कुछ देर और रुकने का हठ किया। मैं यह जाहिर नहीं करना चाहता था कि अपने काम से आया तो स्टेशन ही था और यहाँ सिर्फ बीच का वक्त भरने के लिए पहुँचा हूँ, इसलिए दफ्तर के एक जरूरी काम का बहाना बनाया। वह मान गया और दरवाजे तक मुझे छोड़ने आया। नीचे उतरकर मैंने टैक्सी ले ली। स्टेशन पर आ ड्राइवर को एक का नोट थमाया और जल्दी-जल्दी अन्दर पहुँचा।

गाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ चुकी थी और मुसाफिरों का पहला रेला कुलियों के साथ बाहर निकल रहा था। इधर-उधर से रास्ता बनाता हुआ भीड़ में धँसता गया···कुछ ही दूर, एयरकंडीशंड चेयरकार के सामने खड़ी निंदी दिखलाई दी। उसके कंधे पर पर्स झूल रहा था, बायें हाथ में प्लास्टिक की छोटी-सी जालीदार टोकरी थी और दायें में सूटकेस। पहले से कुछ दुबली लग रही थी और साँवली भी। तलाश करते उसके चेहरे पर गहरी व्यग्रता थी—ऐसे देख रही थी, जैसे न मिलने पर कहीं खो जायेगी।

"हैलो···" उसकी पीठ पर हल्की-सी थपकी मारकर मैंने कहा।

वह मुड़ी, मुस्करायी···मैंने उसके हाथ से टोकरी ले ली और दायीं ओर देखकर पुकार लगायी, "कुलीऽऽऽ···!"

"कुली की क्या जरूरत है ?"

मैंने पलटकर देखा, "बस, यही है तुम्हारा सामान ?"

"हूँ।"

मैंने उसके हाथ से सूटकेस लिया, तो उसने टोकरी मुझसे वापस ले ली। तब तक एक कुली पास आकर रुक गया था। आगे बढ़ते हुए मैंने कहा, "नहीं चाहिए भई।" कुछ बढ़ कर जोड़ा, "बहुत हल्के होकर सफर करने लगी हो तुम।"

मेरे बराबर चलने की कोशिश में दो-तीन लंबे डग भरकर पल्लू सँभालते हुए निंदी बोली, "सहूलियत रहती है।"

"मुझे तो तुम्हारी पुरानी आदत का खयाल था।"

वह खंभों पर लगे गोलाकार चौखटों के फिल्मी पोस्टर देखती रही··· गेट पर आकर मैं ठिठका, जेब में हाथ डाला, तो याद आया कि प्लेटफॉर्म टिकट तो लिया ही नहीं था। टिकट-कलेक्टर ने निंदी के बढ़े हुए हाथ से टिकट ले लिया और सवालिया निगाह से हम दोनों की तरफ देखा।

"मुझे अफसोस है।" मैंने हल्की मुस्कान से अटककर कहा, "ट्रेन प्लेटफॉर्म पर आ चुकी थी···जल्दी में मुझे खयाल ही नहीं रहा कि···"

मेरे एक हाथ में झूलती कार की चाबी पर नजर डालते हुए वह टिकट बढ़ाये दूसरे दो-तीन लोगों की तरफ मुखातिब हो गया।

···अगली सीट पर बैठकर काँच नीचे गिराते हुए निंदी बोली, "बड़ी गर्मी है यहाँ।" और पल्लू का कोना हल्के-हल्के चेहरे पर फिराने लगी।

"हाँ। जब तक बारिश नहीं होती, तब तक तो···"

उसने टोकरी में से पानी की बोतल निकाली, खोली और प्लास्टिक के छोटे-से गिलास में थोड़ा पानी उँडेला, "अभी भी ठंडा है पानी। बड़ौदा से भरा था···लोगे?"

"तुम पी लो। फिर···"

पर उसने गिलास सामने बढ़ा दिया, तो तीन-चार घूंट ले लिए।

साढ़े चार के लगभग बाथरूम का दरवाजा खुलने की आहट हुई। तब तक मैंने बिजली की केतली में पानी रख दिया था और एक सिगरेट सुलगाकर ड्राइंगरूम में हल्की-सी झाड़-पोंछ के बाद कुशन करीने से लगा रहा था। हफ्ते-भर पुराने अखबार समेटकर आलमारी में बंद कर दिये थे। पुरानी पत्रिकाएँ मेज के निचले खाने में लगा दी थीं और भरी हुई तीनों ऐश-ट्रे गैलरी के डिब्बे में उलट आया था।

किचन में आने पर देखा, केतली की नली से सूँ-सूँ की तेज आवाज के साथ भाप के फुहार छूट रहे थे। उसे ऑफ करके चाय का डिब्बा खोला। गैस जलाकर थोड़ा-सा दूध गर्म किया। रैक से दूसरा मग उठाया, तो उस पर धूल की मोटी तह जमी थी। थोड़ा गर्म पानी डालकर साफ किया। आलमारी से बिस्कुट का डिब्बा निकाला और सब ट्रे में सँभालकर बाहर

ले आया।

जब मैंने एक मग मे चाय वना ली, तो पर्दा हिला और हाउसकोट में दूसरी बाँह डालते हुए निदी वाहर आयी।

"हैलो"···मैंने मुस्कराकर कहा, "नींद आयी कि नहीं?"

"थोड़ी देर।" वह आकर सामने दीवान पर बैठ गयी।

"चाय भी वना ली तुमने!" नहाने के बाद ढीली-ढाली चोटी को एक रिबन मे बाँध लिया था। आँखों मे अभी भी आलम था और तन्द्रा।

"हूँ···तुम जरा रुककर लेना···दूसरा कप। ज्यादा स्ट्राग बनेगी।"

उसने हामी में सिर हिलाया। छोटी-सी जमुहाई ली। फिर आँखें बंद करके हल्के हाथों मे माथा सहलाने लगी।

"क्या बात है? दर्द है सिर मे?"

उसने फिर स्वीकृति में सिर हिलाया, "तुम्हारे पास कोई टिकिया पड़ी होगी?"

"हाँ।"

वह अपनी पुरानी लचक में खड़ी हो गयी, "वता दो, उठा लूँगी।"

"पलँग के सिरहाने है—मेज की दराज मे।"

मैंने दूसरे मग में एक चम्मच चीनी डाली और चाय वनाने लगा। कुछ क्षणों बाद निदी आयी और बगल के सोफे पर बैठ गयी। मखमली चप्पलों से पैर निकालकर सामने तिपाई पर टिका लिये। स्ट्रिप फाड़कर एस्प्रो की दो टिकियाँ निकालीं, मुँह मे रखीं और मेरे हाथ से मग लेकर एक बड़ा-सा घूँट भर लिया।

"कल मेरा वापसी का रिजर्वेशन करवा देना। हफ्ते-भर बाद का तो मिल जायेगा?"

"आते ही जाने की भी बात शुरू कर दी!"

"जरूरी है।"

"क्या जरूरी है?" आशू की तो छुट्टियाँ हैं अभी, तुम और ले सकती हो।"

"बाकी नहीं हैं अब। जनवरी में आशू को टाइफाइड हुआ था, तो ले ली थीं।" उसने दो-तीन छोटे-छोटे घूँट लिए। अटककर कहा, "फिर बात

यह है कि···" और रुक गयी।

ऐसे विरामों से मेरा पुराना परिचय था। यह इस बात का सूचक था कि आगे ऐसी बात आ रही है, जिसे विवशता में कहना पड़ रहा है, जिसे वह अपने तक ही रखना चाहती थी, ताकि मुझे चिंतित न होना पड़े, पर अब मेरी जिद है, तो बतलाये बिना कोई चारा नहीं।

मैंने एक नमकीन बिस्कुट का टुकड़ा काटा, "तो ?"

"दरअसल जल्द ही बोर्ड की एक मीटिंग है, जिसमें मेरे सीनियर ग्रेड का भी फैसला होना है और ट्रांसफर का भी। पहली चीज के लिए कोशिश करनी है और दूसरी किसी तरह रुकवानी है। इसलिए बेहतर होगा, अगर एक बार चेयरमैन और दो-तीन सीनियर लोगों से मिल लूँ।"

"तुम अकेली लोगों से मिल-विल लेती हो ? बात कर लेती हो ?"

वह झेंपी-सी मुस्करायी। फिर मग मुँह से लगा लिया।

"आशू का रिजल्ट आया ?"

"हाँ, अच्छे नंबरों से पास हुई है।" एक कुशन उठाकर पीछे रख लिया। कुछ सोचती-सी रही। धीमे स्वर में बोली, "तुम सर्दियों में आये क्यों नहीं ? मैंने इतना इसरार किया था।"

पल-भर के लिए मेरे सामने मर्मांतक यंत्रणा के वे दिन कौंध गये। सिगरेट जलाने को माचिस उठायी, तो तीली दो बार टूटी। लंबा कश लेकर जैसे अपने-आपसे ही कहा, "मैं उन दिनों बहुत उखड़ा हुआ था।"

निंदी स्थिर दृष्टि से सामने देखती रही, जहाँ दीवारों के कोने में एक बड़ा-सा जाला लगा हुआ था। उसके पास ही कॉर्निस पर जो डैकोरेशन-पीसेज थे, उन पर जमी धूल की मोटी तह का अंदाज भी दूर से ही हो जाता था।

"नौकर को हटा दिया क्या ?" सहमति में सिर हिलाया।

"परेशान होते होगे ?"

"नहीं तो···बल्कि उसके होने से ही थी कुछ परेशानी···मैं तो एक तरह से सोने के लिए आता हूँ यहाँ।"

विराम। उन दिनों की बात आयी, तो वातावरण में वह तनाव जैसे फिर से सुलग उठा—दम घोंटनेवाला धुआँ देने लगा। यही कमरे, दरवाजे

और टैरेस—जिनके साथ जुड़ी हुई कितनी ही तीखी स्मृतियां कसक उठीं …कुछ बेनावी मे सिगरेट ऐश-ट्रे मे मसलकर उठ खडा हुआ, "तुम तैयार हो जाओ, तो कहीं बाहर निकलें।"

"हां-हां, बस, पांच मिनट लूंगी।"

एक बडे घूंट के साथ प्याला खाली करके वह भीतर चली गयी, तो बाहर कॉरीडोर में निकल आया। लिफ्ट का बटन दवाया और नीचे आ गया। दरबान के सलाम के जवाब मे सिर हिलाकर सडक तक पहुंचा। सामने बेकरी मे अपनी सहेली के साथ खडी एक लड़की हँस-हँस कर फोन पर बातें कर रही थी…ओह हां, फोन! एकदम याद आया। सुबह से ही लग रहा था कि कुछ है, जो भूल रहा हूं।

कुछ मिनट बाहर चहलकदमी की। लड़कियां चली गयी, तो भीतर आगया। वह नंबर डायल किया, तो एंगेज्ड मिला, मिनट-भर प्रतीक्षा की। दुबारा डायल किया, तब भी एगेज्ड था। रिसीवर रखकर जेबें देखीं, तो पैकेट नही पाया। नुक्कड़ की दुकान से नया पैकेट लिया और सिगरेट सुलगायी। कुछेक लबे कश खीचकर फिर फोन के पास आया…सात-चार-जीरो-नौ-पांच-एक…तत्क्षण घंटी बजने लगी। रिसीवर कुछ ठहर-कर उठाया गया।

'हैलो…' उधर से सुनाई दिया।

"बहुत पॉपुलर हो रही हो। लाइन बरावर एगेज्ड मिलती है।"

वह हँसी, "जलन हो रही है?"

"इस एहसास के सुख से तो मुद्दत पहले निजात मिल गयी।"

हल्की-सी चुभन हुई शायद। क्षणिक विराम। फिर सुनाई दिया, "तो शिकायत किस बात की थी?"

"वक्त खराब होने की।"

वह थोडा इठलायी, "जी हां, हमारे साथ आपका वक्त ही तो खराब होता है।"

"बेशक। पर इस वीक-एंड को नही कर पाऊंगा।"

लगा कि वह संजीदा हो गयी, "क्या बात है?"

"एक मेहमान आये हुए हैं।"

कुछ रुककर उसने कहा, "पहले बतला देते। दो अच्छे इन्वीटेशन छूट गये बेकार—आंटी माथेरान जा रही थीं और कुसुम महाबलेश्वर।"

"तुम्हें खबर करने का मुझे खयाल ही नहीं रहा। पिछले दो-तीन दिन बहुत काम था। सुबह अचानक टिकिट देखे, तो याद आया···मुझे अफसोस है।"

"खैर, ऐसी तो कोई बात नहीं···इतवार को सो लेंगे दिन-भर।"

विराम। "अच्छा···"

"ओक्के···बाई···"

नरीमन प्वाइंट, दीवार के निचले हिस्से पर लहरों के लगातार थपेड़े। दूधिया झाग के बड़े-बड़े थक्के। कभी जब कोई लहर ज्यादा तेजी से टकराती है, तो कुछेक बूंदें हमारे ऊपर आ उछलती हैं। सामने बहुत दूर, पानी की सतह पर सूरज डूब रहा है। मटमैले आकाश में हल्की-सी लालिमा का आभास है···नारियल के चार-छह घूंट लेकर निंदी ने उसे फेंक दिया है। कुछेक पलों के लिए वह डूब जाता है। फिर ऊपर उभरता है, तो उस ओर से आती एक लहर उसे दीवार तक फिसला देती है। लहर पर लहर···

दीवार पर चलते हुए दो-तीन लड़के इस तरफ आते हैं, तो निंदी मेरी बगल में—बल्कि मेरी ओट में—आ जाती है और पूर्ववत् घुटनों को बाँहों से घेर लेती है। उसने पल्लू कंधों पर ले रखा है। दोनों हाथों की बँधी अंजली पर चिबुक टिकाती है, तो हवा के झोंकों में उसके बाल मेरी गर्दन छूने लगते हैं···लहर पर लहर। साल पर साल···कच्चे बचपन के वे दिन। घर की घुटन। घर का तनाव। बहुत-सी बातों का समझ में न आना—गोपनीय संकेत, द्विअर्थी फिकरे, कुत्सित दृष्टियाँ···रात का सन्नाटा। बीच-बीच में डैडी के कमरे से एक पतली आवाज के साथ चूड़ियों की खनखनाहट। तीन पैगों के बाद डैडी का संतुलन टूट जाता। उनके कमरे का दरवाजा भड़ाक से खुलता, "मो ऽऽनूऽ···हराऽऽम खो ऽऽर···"

निंदी लैंप बहुत धीमा कर देती। वे आकर बंद दरवाजा भड़भड़ाते।

वह सूखे गले से कहती, "बाहर गया है।"

"कहाँ ?"

"पढ़ने···शर्मा जी के घर।"

"आने दो नालायक को, फिर देखता हूँ।" और उनका दरवाजा फिर बंद हो जाता।

निदी अल्मारी के पीछे से मुझे निकालती—बाल, चेहरे और कपड़ों पर धूल। पल्लू से मुँह पोंछते हुए रुँधे स्वर मे कहती, "छिह, इतना बड़ा होकर रोता है!" और खुद मुँह फेरकर आँखें पोंछने लगती···

लहर पर लहर। साल पर साल। गर्मी की चिलचिलाती धूप का एक दिन। निदी की अनुपस्थिति में बिना किसी अपराध के बेंतों से बुरी तरह पिटायी। दो दिन के लिए गायब। तीसरे रोज दूसरे शहर से पकड़कर लाया गया···सामने निदी—बाल बिखरे, आँखें लाल। देखते ही जन्नाटे का ऐसा थप्पड़ कि गाल पर पाँचो उँगलियाँ उभर आयीं···"मैं तो नहीं भाग सकती घर से, फिर तू कैसे भागा ? ···बोल, फिर जायेगा मुझे यहाँ छोड़ के ?"

···सर्दियों की रात। निदी के पास। बिस्तर में।

"निदी!" एक साल बड़ी होने के बावजूद शुरू में ही नाम लेकर पुकारने की आदत।

"हूँ।"

"माँ ने आत्महत्या की थी ?"

वह कोहनी के बल उठ आती है, "तू कैसी-कैसी ऊटपटाँग बातें सुना करता है!"

कड़ा स्वर, "मैं क्या पूछ रहा हूँ ? हाँ या ना मे जवाब दो।"

विराम···"हाँ, की थी···वो जो एक डायन है न···खा गयी हमारा सब कुछ।"

साल पर साल। बंबई। नौकरी। निदी शुरू से मेरे पास है। छूटी पढ़ाई पूरी कर रही है···तार···हम फिर एक बार उस शहर में। उस मकान में। उस कमरे में ···चादर से ढका हुआ शव। निदी मेरी बगल में, मुझसे सटी हुई···गहरा सन्नाटा। पनचक्की की एकरस आवाज···जिंदगी का कोई

अध्याय बंद करने से ही तो बंद नहीं हो जाता। उसकी कितनी स्मृतियाँ, कितनी कचोटें, कितने दंश साथ-साथ चलते हैं। वर्तमान का कितना प्रतिशत उसी अतीत की तो उपज होता है…

टॉक ऑफ द टाउन। तेज धुनों के साथ माइक लिए खड़ी क्रूनर का उन्मादी स्वर। बातचीत। हँसी-ठहाके। मद्धिम रोशनी। निंदी एक स्लिप पर जूडी कॉलिस के अपने प्रिय 'डेविड'स सांग' की फरमाइश भेजती है— द स्टार्ज इन योर आइज आर द स्टार्ज इन माइन/एंड बोथ प्रिजनर्स ऑफ दिस लाइफ आर वी/थ्रू द सेम ट्रबुल्ड वाटर्ज वी कैरी अवर टाइम…

पता नहीं, कितनी रात बीत चुकी थी! नींद से भारी पलकें बंद किये ही बाथरूम से निकला और बिस्तर की ओर बढ़ा। अचानक खिड़की की राह पर्दे के पार टैरेसवाले हिस्से में रोशनी का आभास मिला…यानी वहाँ का दरवाजा खुला रह गया है। हाल में आसपास कुछेक वारदातें हुई थीं, जिनमें भीतर घुसने का रास्ता टैरेस ही था। इसलिए सोचा कि निकलकर बंद कर दूँ…ड्राइंगरूम के बीच तक पहुँचने पर देखा कि कोने में एक आकृति झुकी-सी खड़ी है—रेलिंग पर कुहनियाँ, हथेलियों में मुँह।

"निंदी!" उसने मुड़कर देखा।

"क्या कर रही हो यहाँ?"

"नींद नहीं आ रही थी।" वह बहुत हल्की स्मित के साथ बोली— अपराधी-से लहजे में।

"गलती मेरी ही है। वहाँ रेस्तराँ में तुम्हें इतनी स्ट्रांग कॉफी नहीं पिलानी चाहिए थी।"

"कॉफी की बात नहीं…" फिर लगा कि कुछ कहते-कहते हिचक गयी।

"तो नींद न आने का वो सिलसिला चल रहा है अभी?"

"कभी-कभी हो जाता है।"

उसने हल्के आसमानी रंग का पायजामा व कमीज पहन रक्खी थी, कुछ लड़के-जैसी भी लग रही थी और दुबली भी। कमीज का ऊपरी

बहुत सूना था जिसमें पत्ते का उच्चारण झलक उठता था. बाल एक रिबन में बांध कर बाएँ कंधे से आगे की ओर डाल रखे थे···

हल्का अँधेरा। गहरा सन्नाटा। कभी-कभी किसी कार का हॉर्न सुनाई दे जाता था···दूर, नीचे समुद्र की सतह पर स्याही की परत पड़ी थी। उसकी जगह का अंदाज क्वीन्स नैकलेस की हल्की, गोलाकार झिलमिलाहट से होता था। चौपाटी से नरीमन प्वाइंट तक कितनी ही रोशनियाँ और नियॉन-लाइटों के जुगनू चमक रहे थे···रात की खामोशी थी, इसलिए किनारे पर कभी-कभी लहरों के टकराने की आवाज सुनाई दे जाती थी।

"सुनो···एक बात कहनी थी तुमसे।"

उनका स्वर इतना धीमा था कि फुसफुसाहट-जैसा लगा। मैंने उसकी तरफ देखा, पर वह नीचे देख रही थी—चेहरे पर उद्वेग।

"मैंने तुम्हें आर० के बारे में लिखा था।"

मैंने हामी में सिर हिलाया···उस पत्र की अच्छी तरह याद थी। शाम को दफ्तर से आने पर विनीता ने विद्रूप से मेज की ओर संकेत के साथ कहा था, "तुम्हारी लाडली का खत आया है।" देखा तो लिफाफा पहले से ही लापरवाही से फाड़ा गया, पन्ने फूहड़ ढंग से अंदर ठुँसे हुए···पढ़ने के बाद स्थिर स्वर में पूछा, "ये खोला क्यों तुमने ?"

"आपको···खोल लिया, तो कौन-सा गजब हो गया ऐसा ? आखिर बहन की ही तो चिट्ठी है !"

'मेरे सामने निदी की बारीक लिखावट के अक्षर उभरने लगे—अगस्त। हाल में ही बिल्कुल संयोग से मेरी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से हुई, जिसे अगर मैं नहीं जानती तो पुरुष के बारे में मेरी धारणा बिल्कुल एकांगी और अधूरी रह जाती···सितंबर। भाषा कितनी अनावश्यक और अपूर्ण है, यह मुझे अब मालूम पड़ा। बस, एक नजर देखने से ही वह सब कुछ कह दिया जा सकता है, जिसे शब्दों में शायद बाँधा ही नहीं जा सकता···अक्तूबर। पिछला इतवार बहुत अच्छा बीता। हम लोग सुबह से ही सूरज-कुंड चले गये थे। पहले तो कुछ भीड़ थी, पर दोपहर तक सन्नाटा हो गया···दो पुरुषों के स्पर्श तक में इतना अंतर होता है? ···पुनश्च : शाम ढलने से पहले ही हम वापस आ गये थे···नवंबर। आज आर० के बहुत आग्रह

अध्याय बंद करने से ही तो बंद नहीं हो जाता। उसकी कितनी स्मृतियाँ, कितनी कचोटें, कितने दंश साथ-साथ चलते हैं। वर्तमान का कितना प्रतिशत उसी अतीत की तो उपज होता है…

टॉक ऑफ द टाउन। तेज धुनों के साथ माइक लिए खड़ी कूनर का उन्मादी स्वर। बातचीत। हँसी-ठहाके। मद्धिम रोशनी। निंदी एक स्लिप पर जूडी कॉलिंस के अपने प्रिय 'डेविड'स सांग' की फरमाइश भेजती है—द स्टार्ज इन योर आइज आर द स्टार्ज इन माइन/एंड बोथ प्रिजनर्स ऑफ दिस लाइफ आर वी/थ्रू द सेम ट्रबुल्ड वाटर्ज वी कैरी अवर टाइम…

पता नहीं, कितनी रात बीत चुकी थी! नींद से भारी पलकें बंद किये ही बाथरूम से निकला और बिस्तर की ओर बढ़ा। अचानक खिड़की की राह पर्दे के पार टैरेसवाले हिस्से में रोशनी का आभास मिला…यानी वहाँ का दरवाजा खुला रह गया है। हाल में आसपास कुछेक वारदातें हुईं थीं, जिनमें भीतर घुसने का रास्ता टैरेस ही था। इसलिए सोचा कि निकलकर बंद कर दूं…ड्राइंगरूम के बीच तक पहुँचने पर देखा कि कोने में एक आकृति झुकी-सी खड़ी है—रेलिंग पर कुहनियाँ, हथेलियों में मुँह।

"निंदी!" उसने मुड़कर देखा।

"क्या कर रही हो यहाँ?"

"नींद नहीं आ रही थी।" वह बहुत हल्की स्मित के साथ बोली—अपराधी-से लहजे में।

"गलती मेरी ही है। वहाँ रेस्तराँ में तुम्हें इतनी स्ट्रांग कॉफी नहीं पिलानी चाहिए थी।"

"कॉफी की बात नहीं…" फिर लगा कि कुछ कहते-कहते हिचक गयी।

"तो नींद न आने का वो सिलसिला चल रहा है अभी?"

"कभी-कभी हो जाता है।"

उसने हल्के आसमानी रंग का पायजामा व कमीज पहन रक्खी थी, कुछ लड़के-जैसी भी लग रही थी और दुबली भी। कमीज का उपरी

अब उसके टूट जाने के बाद जीने की शर्तें दूसरी होगी ही···'जिंदगी जिंदगी है, उसमें भला-बुरा कुछ नहीं होता।" कहने के साथ ही मुझे अपनी स्थिति याद आयी—कहीं मैं अप्रत्यक्ष ढंग से अपने आपको ही तो न्यायोचित नहीं ठहरा रहा था? क्षण-भर के लिए मैं चौंक गया। क्या यह बात मेरे भीतर इस तरह पैठ गयी है कि मैं अनजाने ही उसकी सफाई देने लगा हूँ? अगर मेरा खुद का वैवाहिक संबंध टूटा न होता—और मैंने उस टूटने से लेकर वर्तमान को इस तरह स्वीकार कर लेने की पूरी प्रक्रिया को स्वयं झेला न होता—तब भी क्या निदी को लेकर मेरी धारणा यही होती? मैंने अपने मन को टटोलने की कोशिश की। मेरे लिए सबसे बड़ी चीज निदी की खुशी है, अगर वह इसे पा रही है, लेकिन ढंग ऐसा है, जिसमें मुझे कुछ सामाजिक तनाव बर्दाश्त करना पड़ता है—गोपनीय संकेत, छिपी फिकरे, कुत्सित दृष्टियाँ—तो क्या उसके तन-मन का गहन संतोष कहीं मेरे साथ ज्यादती है? ··मेरे भीतर एक हिलक-सी उठी···निदी! तेरे लिए मैं क्या कुछ नहीं करूँ···

अगले दिन देर से सोकर उठा। पर्दे के पार धूप की तेजी से ही अंदाज हो गया था कि सूरज काफी ऊपर चढ़ चुका है। ड्राइंगरूम में आया, तो निदी दीवान पर चार-पाँच कुशनों के सहारे बैठी थी—सामने खुला अखबार और चाय की प्याली, लेकिन गुमसुम-सी सामने देखे जा रही थी।

"उठ गये!" आहट से उसका ध्यान बँटा। सीधी हुई और ट्रे से दूसरा कप निकालकर चाय बनाने लगी···वह नहा चुकी थी। वायल की हल्की-सी क्रीम रंग की साड़ी पहने थी। बाल एक रिबन में बाँध लिये थे।

"तुम कब से जागी हुई हो?" सामने सोफे पर बैठ कर मैंने पैर छोटी मेज पर टिका लिये।

"बहुत देर से···यह तीसरी बार चाय बनायी है।"

"अरे···आवाज क्यों नहीं दे ली मुझे?"

वह सिर झुकाये चीनी मिलाती रही, फिर कप मेरे सामने रख दिया। उठकर दूसरे कमरे में गयी और पैकेट व माचिस उठा लायी। फिर कुशन

पर मैं पहली बार उनके यहाँ गयी। उनका परिवार कहीं बाहर गया हुआ है। बहुत सुंदर घर है—बड़े ही सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया···पुनश्च : मैं उनके बैडरूम में नहीं गयी थी···

"सोचा तो नहीं था पहले। शारीरिक संबंधों का जो रूप मैंने जाना था, उसकी याद करके ही सिहरन होती थी···पर इन सर्दियों में यकायक लगा कि···अपने कड़ुवे अनुभव की वजह से हमेशा के लिए दुराग्रही नहीं हुआ जा सकता···और फिर अपने पर बिलकुल काबू नहीं रहा। लगा, कि अगर जिंदा रहना है, तो किसी भी मूल्य पर···" वह अटक गयी। दो-तीन बार खाँस कर गले की खराश साफ की।

हवा का एक झोंका हमें छूकर गुजर गया, नम-सा। अब बरसात आने से पहले की बौछारें गिरनी चाहिए, मैंने सोचा।

"मैंने जब तुम्हें लांग-डिस्टेंस कॉल किया था, तब इस बारे में बताना चाहती थी, पर एक-दो बातें करते ही अचानक लगा कि···ठीक से कह नहीं पाऊँगी, क्योंकि सामने न होने से मालूम नहीं पड़ेगा कि तुम इसे किस तरह से ले रहे हो!"

मैंने सोचा कि हँस कर कहूँ, लेकिन देख तुम अभी भी नीचे ही रही हो।

"तुम्हें घिन हो रही है मुझसे?"

"पागलपन नहीं करते।" मैंने हल्के हाथ से उसका कंधा छुआ, "मैंने भी यही सब किया है—और बिना किसी भावना के।"

"तुम्हारी बात दूसरी है। तुम पुरुष हो।" आवेग से उसकी पीठ हिल उठी, "मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि मैं यहाँ तक जाऊँगी—जाना पड़ेगा···कभी-कभी मैं अपनी ही नजरों में खुद को इतना गिरा हुआ महसूस करती हूँ कि···आशू जानेगी कभी, तो क्या सोचेगी···"

मैंने सांत्वना का हाथ उसके सिर पर रक्खा, तो वह मेरी एक बाँह का सहारा लेकर सीधी हो गयी। उसकी उँगलियों की पकड़ नर्म थी, चेहरा दूसरी ओर घूमा हुआ। कोहनी मुड़े हुए एक हाथ को मुँह के सामने कर रखा था।

"जब तक तुम्हारी शादी चली, तब तक तो कुछ गलत नहीं था कहीं।

अब उसके टूट जाने के बाद जीने की शर्तें दूसरी होंगी ही···जिंदगी जिंदगी है, उसमे भला-बुरा कुछ नही होता।" कहने के साथ ही मुझे अपनी स्थिति याद आयी—कहीं मैं अप्रत्यक्ष ढंग से अपने आपको ही तो न्यायोचित नही ठहरा रहा था? क्षण-भर के लिए मैं चौंक गया। क्या यह बात मेरे भीतर इस तरह पैठ गयी है कि मैं अनजाने ही उसकी सफाई देने लगा हूँ? अगर मेरा खुद का वैवाहिक संबंध टूटा न होता—और मैंने उस टूटने से लेकर वर्तमान को इस तरह स्वीकार कर लेने की पूरी प्रक्रिया को स्वयं झेला न होता—तब भी क्या निंदी को लेकर मेरी धारणा यही होती? मैंने अपने मन को टटोलने की कोशिश की। मेरे लिए सबसे बड़ी चीज निंदी की खुशी है, अगर वह इसे पा रही है, लेकिन ढग ऐसा है, जिसमे मुझे कुछ सामाजिक तनाव बर्दाश्त करना पडता है—गोपनीय संकेत, द्विअर्थी फिकरे, कुत्सित दृष्टियाँ—तो क्या उसके तन-मन का गहन संतोष कहीं मेरे साथ ज्यादती है? ··मेरे भीतर एक हिलक-सी उठी···निंदी! तेरे लिए मैं क्या कुछ नही करूँ···

अगले दिन देर मे सोकर उठा। पर्दे के पार धूप की तेजी से ही अंदाज हो गया था कि सूरज काफी ऊपर चढ चुका है। ड्राइंगरूम मे आया, तो निंदी दीवान पर चार-पाँच कुशनों के सहारे बैठी थी—सामने खुला अखबार और चाय की प्याली, लेकिन गुमसुम-सी सामने देखे जा रही थी।

"उठ गये!" आहट से उसका ध्यान बँटा। सीधी हुई और ट्रे से दूसरा कप निकालकर चाय बनाने लगी···वह नहा चुकी थी। वायल की हल्की-सी क्रीम रंग की साडी पहने थी। बाल एक रिबन में बाँध लिये थे।

"तुम कब से जागी हुई हो?" सामने सोफे पर बैठ कर मैंने पैर छोटी मेज पर टिका लिये।

"बहुत देर से···यह तीसरी बार चाय बनायी है।"

"अरे···आवाज क्यों नहीं दे ली मुझे?"

वह सिर झुकाये चीनी मिलाती रही, फिर कप मेरे सामने रख दिया। उठकर दूसरे कमरे में गयी और पैकेट व माचिस उठा लायी। फिर कुशन

के नीचे से एक लिफाफा निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया, "आशू का खत आया है।"

चाय के दो-तीन बड़े-बड़े घूंट भरकर मैंने सिगरेट सुलगायी··· अपने पापा के पैड पर ही आशू ने सँभाल-सँभालकर लिखा था, "पापा हमें रोजाना घुमाने ले जाते हैं। नरसों हम बोट से बैलूर मठ गये थे—बहुत मजा आया। परसों बोटेनिकल गार्डन, कल जू। लेक तो कई बार जा चुके हैं···आज हमारी बंपर शापिंग हुई थी—फ्रॉक, स्ट्रेच पैंट, बैलबॉटम, लुंगी, कुरते, जूते। हमने तुम्हारे लिए भी एक बहुत बढ़िया चिज्जी ली है, पर अभी बतलायेंगे नहीं···हमें यहाँ बहुत अच्छा लग रहा है। बस, तुम्हारी याद आती है और कभी-कभी रुलाई भी आ जाती है···हम सात तारीख को चटर्जी अंकल (पापा के दोस्त) के साथ दिल्ली पहुँचेंगे। पापा ने कहा है—(यह पंक्ति अच्छी तरह काट दी गयी थी)। पापा अब लिखना बंद करके सोने को कह रहे हैं, क्योंकि शाम से हमें टेंप्रेचर है, पर घबराने की कोई बात नहीं है···तुम्हें बहुत-बहुत प्यार और मामा को भी··· तुम्हारी, आशू···पी० एस०—स्पैलिंग की गलतियाँ माइंड मत करना प्लीज ! हम तुम्हारी जिद से ही हिंदी में लिखते हैं···ए।"

लिफाफे पर पता आशू के पापा ने ही लिखा था—पहले निंदी का नाम, फिर मार्फत और मेरा नाम नीचे के बायें कोने पर लिख दिया था—फ्राम आशू···लैटर-हैड पर सजावटी अक्षरों में पूरा नाम छपा था··· कागज की चिकनी सतह पर से वे जाने-पहचाने नक्श उभरने लगे—छोटी, तेज आँखें, होंठों की कुटिल वक्रता, चमकते नग की अँगूठीवाले हाथ का सिगार थामे हुए ऊपर उठना, चेहरे पर गहरा आत्मविश्वास···यह है वह पहला पुरुष, जो निंदी के जीवन में आया। जिसने अपने पति के अधिकार का उपयोग करते हुए उसकी देह को अच्छी तरह जाना-पहचाना, कई बार उसकी इच्छा के विपरीत भी। इसने उसे कैसी शारीरिक अरुचि और मानसिक यंत्रणा दी—और यही है निंदी की उस बच्ची का पिता, जो उसके लिए बेहद गहरी भावात्मक तृप्ति का कारण बनी। जो आज अगर न होती, तो निंदी शायद जीवित भी न रह पाती···

"चाय ठंडी हो रही है !"

निदी की आवाज से मैं चौंका। वह लैटर-हैड पर जमी मेरी निगाह देख कर अखबार उठाने लगी थी। पल-भर के लिए हमारी नजरें मिलीं और साथ के अनगिनत आसंग सामने चमक गये—उनके एक के बाद एक सामने खुलते गये चारित्रिक दोष, निदी के द्वारा समझौते की अस्वीकृति, उनका दुर्व्यवहार, मेरा विनम्र समझाना, उनके द्वारा मेरी उपेक्षा, अपमान···मेरे सीने पर सिर रख निदी का फूट-फूटकर रोना, साड़ी का पल्लू पकड़े पीछे आशू की रुआँसी सूरत···एक गहरी साँस लेकर मैंने कप उठा लिया।

"आज कोई पिक्चर दिखलाओ।" दूसरे पन्ने पर इधर-उधर देखते हुए निदी बोली।

"जरूर···तय कर लो। मैटनी में ही चलेंगे।"

फिर कुछ देर चुप्पी। "आशू की पढाई-वढाई ठीक चल रही है ?"

"हां।"

"वो जानती है उनको ?"

निदी ने मेरी तरफ देखा। फिर नीचे देखने लगी, "हां, क्यों नहीं।"

"रुख कैसा है उसका ?"

"बस, ठीक-ठाक। कुछ खास नहीं। हैलो-हैलो कर लेती है। अपने पापा से बहुत अटैच्ड है, इसलिए···" कुछ क्षण अंतर्मुख-सी मेज की ओर देखती रही, फिर सिर झटककर बोली, "और दो-चार साल। आशू कुछ बड़ी हो जाये, मैं कुछ बूढ़ी हो जाऊँ, फिर ठंडा पड जायेगा सब।"

कुछ क्षण टैरेस की ओर उडते झीने पर्दे को देखता रहा। निदी ने बिना पूछे ही उस प्रश्न का उत्तर दे दिया था, जो इधर कुछ समय से मुझे कुरेदने लगा था। शायद उसे लगा होगा कि ऐसी कोई बात मेरे मन में है, इसलिए क्यों मुझे पूछने की दुविधा या प्रतीक्षा की अनावश्यक व्यग्रता दी जाये···हम लोग एक-दूसरे को कितनी अच्छी तरह समझते हैं—बहुत लंबे साथवाले किसी सुखी दंपति से भी अधिक।

नीचे, दूर चौपाटी से नरीमन प्वाइंट तक का समुद्र। बायीं ओर पाँच-छह नावें दिखलाई दे रही हैं—थोड़े-थोड़े फासले पर। दायीं तरफ एक के बाद एक बिल्डिगों का सिलसिला।

निंदी सामने कुछ पिक्चर-पोस्टकार्ड लिये बैठी है और उन पर आघू का पता लिख रही है। दोनों कोहनियाँ मेज पर टिकी हुईं। मुंह थोड़ा तिरछा व झुका हुआ···कल सुबह निंदी चली जायेगी···कुछ क्षण एकटक उसे देखता हूँ। उसका एक कुंडल बहुत आहिस्ता से कांपा है···कल से मैं अपनी पुरानी जिंदगी में वापस लौट जाऊँगा। विश्वास नहीं होता कि एक हफ्ता बीत गया—इतनी जल्दी, पलक झपकते। और बातें भी बहुत अधिक नहीं कीं। लेकिन फिर भी बहुत भरा-पूरा-सा महसूस हो रहा है। सात दिनों की वह निश्चित दिनचर्या···कभी भी बाहर निकले, कहीं भी घूम पड़े—विहार लेक, मिल्क कॉलोनी, जुहू,···बेंत्रोलीज, समोवार, कई डिस्कोथिक···और फिल्में।

"टिकट लगा दो।" निंदी मेरे सामने कुछ पोस्टकार्ड खिसका देती है, तो मैं एक-एक टिकट काट कर चिपकाने लगता हूँ···गेटवे ऑफ इंडिया। ताजमहल होटल। फ्लोरा फाउंटेन। चर्चगेट स्टेशन। हैंगिंग गार्डन। कमला नेहरू पार्क। बूट हाउस···आखिरी पोस्टकार्ड पर पता देखकर कुछ चौंकता हूँ।

"यह भेज रही हो आर० को?"

निंदी मुँह नीचा किये शरारत से मुस्करा देती है···मुझे दो दिन पहले के उस पत्र का ध्यान आता है, जो निंदी ने मेरी ओर बढ़ा दिया था। लिफाफे पर पहले निंदी का नाम—शादी से पहले के सरनेम के साथ। फिर मार्फत—मेरा नाम···सफेद लैटर-पेपर पर इस तरह की गिनी-चुनी पंक्तियाँ थीं···प्रिय निंदी, तुम सकुशल पहुँच गयी होगी। तुम्हारे जाने के अगले दिन ही कंपनी के एक काम से अचानक मुझे गोहाटी जाना पड़ गया। मौसम की खराबी के कारण प्लेन वहाँ लैंड नहीं कर सका, इसलिए कई परेशानियाँ हुईं। वापसी में दिल्ली में मौसम खराब था, इसलिए जहाज आगरा उतरा। है न मजेदार संयोग?···इस हफ्ते जोनल डायरेक्टर के आ जाने से दफ्तर में काफी व्यस्तता है। पूरा दिन कैसे निकल

गया—पता ही नहीं चलता…तुम यहाँ नहीं हो और कनॉट प्लेस के सारे अच्छे रेस्तराँ बंद हैं—वेटरों की हड़ताल चल रही है। भाई के साथ तुम्हारा वक्त तो बहुत अच्छा कट रहा होगा (उन्हें मेरे रिगार्ड्स देना)। वहाँ शायद धूप में उतनी जलन न हो, जितनी कि यहाँ है…लिखना, कब आ रही हो! सस्नेह, आर०।

उस पत्र को ध्यान से देखा, तो सतरों के बीच से एक अस्पष्ट-सी आकृति उभरने लगी…सौम्य, आकर्षक, विनम्र…तो यह है वह दूसरा पुरुष, जो निदी के जीवन में आया। जिसने अपने प्रेम के अधिकार से निदी के जिस्म को अच्छी तरह जाना-पहचाना, हमेशा उसकी इच्छा के अनुसार। इसने उसे कैसी शारीरिक तृप्ति और मानसिक संबल दिया। जो अगर न होता, तो पुरुष के बारे में निदी की धारणा हमेशा गलत रहती…

"अपने दोस्त से मुझे नहीं मिलवाओगी?" पोस्टकार्ड निदी के तरफ खिसकाते हुए मैंने कहा।

वह मुस्करायी, "चलो दिल्ली।"

"क्रिसमस की छुट्टियों में जब आशू कलकत्ते चली जाये, तब तुम दोनों यहाँ क्यों नहीं आ जाते?…मैं उन्हें औपचारिक पत्र लिख दूँगा।"

निदी गंभीर हो गयी। कुछ क्षण सोचती रही, "उन्हें शायद कुछ हिचकिचाहट हो। मैं बात करूँगी।" थोड़ा रुककर बोली, "अगर यह प्रोग्राम नहीं बना—और शायद ही बने—तो तुम वहीं आना। हम दोनों मसूरी चलेंगे…मैंने कई सालों से स्नो-फॉल नहीं देखा।"

"अच्छा।"

…नीचे उतरते हुए पहली सीढ़ी पर ऊँची हील की सैंडिलों से निदी ज़रा-सी लड़खड़ायी, तो लपककर मैंने बाँह थाम ली। काउंटर पर कोकाकोला पीने के साथ बराबर इस ओर देखते हुए कम उम्र की दो लड़कियों में से एक दूसरी से फुसफुसा कर बोली, "व्हाट ए चार्मिंग कपल!"…

देख रहा था। तब सेल्स-गर्ल ने नम्र मुस्कान से अंग्रेजी में कहा, "अपने पति से पसंद करा लीजिए।"

···पार्क। रेलिंग के सहारे। पीछे जालीदार छप्पर से आती परिंदों की लगातार चहचहाहट। नीचे हरियाली का सिलसिला और सामने समुद्र का अपार विस्तार।

"सुनो।" वह बोली।

"हूँ।"

"विनीता का कुछ सामान रह गया है यहाँ ? उसने कहलवाया था··· मेरा एक कुलीग उसका दोस्त है।"

घड़ी-भर याद करके कहा, "मैंने तो सब कुछ भिजवा दिया था—बहुत पहले ही।"

"देख लेना। शायद एक तो ट्रांजिस्टर है और दो-तीन जेवर।"

"लॉकर में देख लूँगा। मैं तो मुद्दत से गया ही नहीं उस तरफ।"

थोड़ी देर चुप्पी। हवा के दो-तीन तेज झोंके आये, तो निंदी ने पल्लू माथे पर ले लिया। दूर, नीचे देखते हुए आहिस्ता से कहा, "विनीता बाहर जा रही है।"

पल-भर के लिए हमारी दृष्टि मिली और साथ के अनगिनत आसंग सामने कौंध गये—विनीता का तेज स्वभाव, उसका भिन्न जीवन-दर्शन—शादी से पहले दोनों ही चीजें इस तरह सामने नहीं आयी थीं···विवाह के महीने-भर बाद से ही नसों को तोड़नेवाला घर का तनाव, सोने के अलग कमरे, घुटा हुआ सन्नाटा···फिर पति का घर छोड़ कर आयी हुई क्लांत निंदी···विनीता की कटूक्तियाँ, व्यंग्य, तिरस्कार···मेरे सीने पर सिर रख निंदी का बिलख-बिलखकर रोना। साड़ी का पल्लू पकड़े पीछे आशू की रुआँसी सूरत···बिल्लौरी फूलदान की फर्श पर तीखी छनछनाहट और विनीता का क्रोधोन्मत्त स्वर, "योर्स इज ए कंडेम्ड फैमिली!"

एक सिगरेट सुलगायी, तो दो तीलियाँ टूटीं। चार-छह लंबे-लंबे कश लिये।

"अब मुझे लगता है कि विनीता ठीक ही कहती थी। हम दोनों ही शायद कुछ गलत ढंग के मूल्य ढो रहे थे···नहीं ?"

निंदी जवाब के लिए पल-भर मेरी ओर देखती रही, लेकिन विनीता की पंख फड़फड़ाती सैकड़ों स्मृतियों ने यकायक मुझे ढक लिया—विनीता का लंबा, छरहरा, साँवला जिस्म, गर्दन के पास जहाँ ब्लाउज का किनारा होता है, वहाँ एक सुकुमार तिल, भावावेश में होंठों के कोनों की हल्की कँपकँपाहट···मेरे मन में सहसा आवेग-सा उठा कि काश ! केवल एक क्षण के लिए···

इस बिंदु पर मैं और निंदी अलग-अलग खड़े थे—मुझे बीते हुए कल से भावात्मक लगाव था, उसे मौजूदा आज से। मैं चाहते हुए भी विनीता को भूल नहीं पाया था, निंदी के लिए उसका पति केवल बच्ची के पिता के रूप में जीवित बचा था—और कितना समय लगेगा इन यादों के मिटने में ?

सीधा हुआ, तो दायाँ हाथ रेलिंग पर रक्खे निंदी के एक हाथ से छू गया। यों ही उसकी नर्म उँगलियाँ खोल कर देखीं···"तुम तो बड़े नाखून रखती थीं पहले ?"

"काट दिये···केयर करनी पड़ती थी।"

सुबह देर से आँख खुली। बिस्तर से निकला, तो निंदी तैयार थी। सामान पैक कर लिया था···जल्दी से शेव करके नहाया। कपड़े बदले। नाश्ता किया।

सामान नीचे गाड़ी में पहुँच गया, तो उठते हुए निंदी ने पर्स से दस के कुछ नोट निकाले और मेज पर रक्खे पेपरवेट से दबा दिये। मेरी सवालिया निगाह के उत्तर में बोली, "टिकट के पैसे हैं।"

मैंने पल-भर ध्यान से उसे देखा, तो जैसे पृष्ठभूमि में विनीता का ऊँचा स्वर सुनाई दे गया। नर्मी से कहा, "ये सब क्यों कर रही हो निंदी ? ···अब कोई झगड़ा करने वाला नहीं है।"

"वो बात नहीं।"

"तो फिर क्या बात है ?"

अटक-अटक कर कहा, "मैंने वो घर छोड़ा था अपने को बचाने

देख रहा था। तब सेल्स-गर्ल ने नम्र मुस्कान से अंग्रेजी में कहा, "अपने पति से पसंद करा लीजिए।"

...पार्क। रेलिंग के सहारे। पीछे जालीदार छप्पर से आती परिंदों की लगातार चहचहाहट। नीचे हरियाली का सिलसिला और सामने समुद्र का अपार विस्तार।

"सुनो।" वह बोली।

"हूँ।"

"विनीता का कुछ सामान रह गया है यहाँ ? उसने कहलवाया था... मेरा एक कुलीग उसका दोस्त है।"

घड़ी-भर याद करके कहा, "मैंने तो सब कुछ भिजवा दिया था—बहुत पहले ही।"

"देख लेना। शायद एक तो ट्रांजिस्टर है और दो-तीन जेवर।"

"लॉकर में देख लूंगा। मैं तो मुद्दत से गया ही नहीं उस तरफ।"

थोड़ी देर चुप्पी। हवा के दो-तीन तेज झोंके आये, तो निंदी ने पल्लू माथे पर ले लिया। दूर, नीचे देखते हुए आहिस्ता से कहा, "विनीता बाहर जा रही है।"

पल-भर के लिए हमारी दृष्टि मिली और साथ के अनगिनत आसंग सामने कौंध गये—विनीता का तेज स्वभाव, उसका भिन्न जीवन-दर्शन—शादी से पहले दोनों ही चीजें इस तरह सामने नहीं आयी थीं...विवाह के महीने-भर बाद से ही नसों को तोड़नेवाला घर का तनाव, सोने के अलग कमरे, घुटा हुआ सन्नाटा...फिर पति का घर छोड़ कर आयी हुई क्लांत निंदी...विनीता की कटूक्तियाँ, व्यंग्य, तिरस्कार...मेरे सीने पर सिर रख निंदी का बिलख-बिलखकर रोना। साड़ी का पल्लू पकड़े पीछे आशू की रुआँसी सूरत...बिल्लौरी फूलदान की फर्श पर तीखी छनछनाहट और विनीता का क्रोधोन्मत्त स्वर, "योर्स इज ए कंडेम्ड फैमिली !"

एक सिगरेट सुलगायी, तो दो तीलियाँ टूटीं। चार-छह लंबे-लंबे कश लिये।

"अब मुझे लगता है कि विनीता ठीक ही कहती थी। हम दोनों ही शायद कुछ गलत ढंग के मूल्य ढो रहे थे...नहीं ?"

निदी जवाब के लिए पल-भर मेरी ओर देखती रही, लेकिन विनीता की पंख फड़फड़ाती सैकड़ों स्मृतियों ने यकायक मुझे ढक लिया—विनीता का लंबा, छरहरा, साँवला जिस्म, गर्दन के पास जहाँ ब्लाउज का किनारा होता है, वहाँ एक सुकुमार तिल, भावावेश में होंठों के कोनों की हल्की कँपकँपाहट···मेरे मन में सहसा आवेग-सा उठा कि काश ! केवल एक क्षण के लिए···

इस बिंदु पर मैं और निदी अलग-अलग खड़े थे—मुझे बीते हुए कल से भावात्मक लगाव था, उसे मौजूदा आज से। मैं चाहते हुए भी विनीता को भूल नहीं पाया था, निदी के लिए उसका पति केवल बच्चों के पिता के रूप में जीवित बचा था—और कितना समय लगेगा इन यादों के मिटने में ?

सीधा हुआ, तो दायाँ हाथ रेलिंग पर रक्खे निदी के एक हाथ से छू गया। यों ही उसकी नर्म उँगलियाँ खोल कर देखीं····"तुम तो बड़े नाखून रखती थीं पहले ?"

"काट दिये···केयर करनी पड़ती थी।"

सुबह देर से आँख खुली। बिस्तर से निकला, तो निदी तैयार थी। सामान पैक कर लिया था···जल्दी से शेव करके नहाया। कपड़े बदले। नाश्ता किया।

सामान नीचे गाड़ी में पहुँच गया, तो उठते हुए निदी ने पर्स से दस के कुछ नोट निकाले और मेज पर रखे पेपरवेट से दबा दिये। मेरी सवालिया निगाह के उत्तर में बोली, "टिकट के पैसे हैं।"

मैंने पल-भर ध्यान से उसे देखा, तो जैसे पृष्ठभूमि में विनीता का ऊँचा स्वर सुनाई दे गया। नर्मी से कहा, "ये सब क्यों कर रही हो निदी ? ···अब कोई झगड़ा करने वाला नहीं है।"

"वो बात नहीं।"

"तो फिर क्या बात है ?"

अटक-अटक कर कहा, "मैंने वो घर छोड़ा था अपने को बचाने को

खातिर, पर बोझ तुम पर बनी थी। किसी के कहने की बात नहीं है, लेकिन क्या अपने ही मन में चुभन नहीं होती ?···फिर अब सब ठीक-ठाक चल रहा है, तो क्यों बेकार···और जब जरूरत होगी, तो मैं खुद ही माँग लूँगी···तुमसे नहीं माँगूँगी, तो किससे माँगूँगी ?"

रास्ते में लगभग चुप्पी रही। नाना चौक पर ट्रैफिक जाम था, इसलिए बंबई सेंट्रल पहुँचते-पहुँचते नौ बजकर छह-सात मिनट हो चुके थे। पर निंदी के कम सामान से इत्मीनान था। सूटकेस मैंने उठा लिया, प्लास्टिक की डलिया उसने। चेयरकार में सीट ढूँढने में भी कोई मुश्किल नहीं हुई। संयोग से सीट भी खिड़की से लगी हुई ही थी। जब तक निंदी सामान रक्खे और बैठे, आखिरी ह्विसिल सुनाई दे गई।

मैंने उसके सिर पर हाथ रक्खा, "अच्छा···" वह तरल आँखों के साथ मुस्करायी।

रेंगना शुरू कर चुकी ट्रेन से मैं नीचे उतर आया। निंदी खिड़की से हाथ हिला रही थी···बस, इसी झलक के साथ डिब्बा ओझल हो गया··· एक के बाद एक पहियों की खट्-खट् और आसपास का कोलाहल···निंदी चली गयी—मुड़ते हुए बड़ी-सी घड़ी पर निगाह के साथ इस अहसास का खालीपन जैसे पहली बार महसूस हुआ···अब ?···दिन-भर तो खैर दफ्तर में निकल जाएगा। फिर शाम ?···छह अंकों के उस फोन नंबर की याद आयी, जो डायल करने पर अक्सर एंगेज्ड मिलता है।

"टिकट ?"

मैं चौंका···टिकट कलेक्टर सवालिया निगाह से मेरी ओर देख रहा था। मैंने ठिठक कर जेब में हाथ डाला, तो याद आया कि प्लेटफॉर्म टिकट तो लिया ही नहीं था।

"मुझे अफसोस है," मैं अटक कर बोला, "ट्रेन चलने ही वाली थी। जल्दी में मुझे खयाल ही नहीं रहा कि···"

उसने एक नजर मेरे हाथ में झूलती कार की चाबी पर डाली, फिर टिकट बढ़ाये दूसरे दो-तीन लोगों की तरफ मुड़ गया□

"यस्सर ?"

मैंने एक जेब से सिगरेट के पैकेट को निकालकर टेबल पर रखा था और एक जेब से माचिस को। फिर टेबल पर कुहनियाँ टिकाते हुए कहा था, "कॉफी !"

"जब मेम सा'ब आयेंगा, तब ?" उसके होठों पर भेद-भरी मुसकान थी।

मैं एकदम निश्चय नहीं कर पाया कि यह बदतमीजी है या नहीं, लेकिन वेटर की आँखों में सहसा किसी आशंका की छाया उतर आयी थी —शायद मेरी संभावित नाराजगी के भय से···और जैसे उसे इसी स्थिति से उबारने के लिए मैं कह गया था—"अभी भी और तब भी !"

उसके होठों की मुसकान आँखों की चमक में प्रतिविम्बित हुई थी और मैं समझ गया था कि मेरा बुरा न मानना उसे अच्छा लगा है।

"अब्भी दो मिन्ट में लायेंगा सा'ब !···एकदम हाइकिलास !"

मैंने अपने आप ही मुसकराते हुए सिगरेट सुलगायी थी और एक लम्बा कश लेकर सिनेमाई अन्दाज में धुएँ के छल्ले बनाने लगा था।··· नजरें घड़ी पर फिसलती हुई दरवाजे तक पहुँची थीं।···साढ़े पाँच बज चुके थे।···पाँच बजे आफिस बन्द हुआ होगा। वहाँ से पाँच मिनट में बस स्टॉप, बस से पन्द्रह मिनट में कोलाबा···और तीन-चार मिनट में इस 'लियोपोल्ड' तक···यानी अब किसी भी क्षण शीशे का बन्द दरवाजा आहिस्ता से खुल सकता था और सैंडिलों की खट-खट ठीक मेरी टेबल तक आकर रुक सकती थी···

"हैल्लो निक !"

"हैल्लो स्वीटीऽऽ···!"

···वेटर ने खट-से ट्रे टेबल पर रख दी थी···और मैं कप में चम्मच चलाते हुए, हाथ के हिलने के कारण कमीज और लेदर जैकेट के बीच चिकने पन्नों की सरसराहट महसूस कर रहा था···और सोच रहा था कि जब मैं यह नया रंग-बिरंगा कॉमिक आहिस्ते से उसके हाथों में दूँगा, तो वह किस तरह मेरी आँखों में देखकर डूबी-सी मुसकरायेगी—"निक ! ··· यू आर वण्डरफुल !"···तब मुझे वह पहली मुलाकात भी याद आयी थी।

…मैं डिक के यहाँ गया था और जूली दरवाजे पर ही मिली थी।

"आओ, तुम्हें मिलवायें।" बॉल्ड, घुंघराले बालों पर आहिस्ते से उँगलियाँ फिराते हुए उसने कहा था।

"किससे ?"

लेकिन जवाब देने की बजाय उसने आगे बढ़कर ड्राइंगरूम का परदा खिसका दिया था।…सामने लम्बे सोफे पर एक लड़की घुटने मोड़े, पीठ के पीछे कुशन लगाये अधलेटी थी। एक हाथ में मुड़ा हुआ कॉमिक था और दूसरे में लम्बा चॉकलेट जिसे धीरे-धीरे चूहों की तरह कुतरा जा रहा था।…दरवाजे पर आहट सुन वह सहसा सकपकाकर स्कर्ट का निचला घेर सँभालने लगी थी।

"शर्ली!…माय फ्रेण्ड ऐण्ड कुलीग!…कॉमिक्स के पीछे दीवानी है।" फिर दुष्टता से जोड दिया था, "जस्ट गिव हर ए कॉमिक ऐण्ड हैव हर…"

वाक्य खत्म होते न होते शर्ली ने मेज की आड में जूली का पैर जोर से दबा दिया था।…वह दर्द के बावजूद मुसकराती हुई अलग हटकर 'सी सी' करने लगी थी।

मैं गरदन में हिलती-डुलती बडे-बड़े मोतियों की माला के ऊपर शर्ली का साँवला, आकर्षक चेहरा देख रहा था।…उसकी नाक लम्बी और सुघड़ थी। आँखें मामूली और होंठ बहुत सफाई से तराशे हुए…जैसे बस, चूमने के लिए बने हों!…मुझे लगा था कि लिपस्टिक का शेड उसके रंग से मैच नहीं कर रहा है।…कभी मौका मिला तो कहूँगा, मैंने सोचा था।

"निक्की, मैं और डिक आज जरा बिजी हैं।…वी आर गोइंड टु सी ए मूवी!" जूली ने फ्रिज से कोकाकोला की बोतलें निकालते हुए मेरी ओर मुडकर आजिजी से कहा था, "तुम शर्ली को उसके यहाँ तक छोड दोगे? …प्लीज!" और उसने शर्ली की ओर ऐसे पेट्रोनाईजिग प्यार से देखा था जैसे वह एक मामूली बच्ची हो।

"हाँ…हाँ, निक!…प्लीज!…डू इट ऐज ए फेवर टु मी!" मुँह में सिगरेट दबाये, टाई की नॉट ठीक करता हुआ डिक पिछले कमरे से निकल

आया था···और कुछ देर बाद बाहर से लिफ्ट का दरवाजा बन्द करते हुए उसने धीरे से कहा था, "किडी, तुम आजकल बिलकुल खाली हो।···टेक ए चान्स !"

···मैं एक सिगरेट जलाता हूँ और तीली ऐश-ट्रे में डाल देता हूँ।··· कुछ क्षणों वह जलती रहती है, फिर सहसा भभककर बुझ जाती है···और धुएँ की पतली लकीर लहराती, बल खाती हुई ऊपर उठने लगती है···मैं कसमसाकर पहलू बदलता हूँ।···अब मुझे कहीं नहीं जाना है।···अब मुझे वक्त का कोई खयाल नहीं···और एक उड़ती-उड़ती नजर घड़ी पर डालता हूँ···अगर शर्ली आ गयी होती, तो हम इस समय किसी सिनेमा-हाउस के कॉरीडोर में घूमते हुए तस्वीरें देख रहे होते···या अन्दर बैठे फिल्म शुरू होने के इन्तजार में पॉटेटो-चिप्स चबाते हुए चल रहा इन्स्ट्रुमेण्टल सुन रहे होते···या अभी-अभी शुरू हुई फिल्म का राइट-अप पढ़ रहे होते।···डिनर के बाद टहलते हुए गेटवे ऑव इण्डिया तक जाते···फिर रात के अँधेरे में चमकती हुई नियान बत्तियाँ देखते हुए 'गुलमोहर' से 'ताज' की ओर···चाकलेट लेने के लिए कोने की छोटी-सी 'लिटिल पीक' में घुसते तो काउण्टर पर चश्मा लगाये खड़ी लड़की हमेशा की तरह मुस्कराती···और बाहर निकलने पर अँगुलियाँ ऊपर हवा में हिलाकर विश् करती···।

"वह लड़की मुझे अच्छी लगती है," एक बार शर्ली ने कहा था।

"यऽऽअ···शी इज स्वीट एण्ड सिम्पल !"

हम उस समय समुन्दर के किनारे कफ परेड में एक बेंच पर बैठे थे। नजदीक की बेंचें खाली थीं और अँधेरे में 'नेकलेस' की बत्तियाँ झिलमिला रही थीं। पीछे से कोई कार गुजरती, तो हॉर्न की आवाज या एंजिन की घरघराहट सुनाई दे जाती।···उसका दायाँ हाथ मेरे हाथ में था और मैं उसकी कलाई में बँधी नन्ही-सी घड़ी और बीच की अँगुली की बड़ी-सी अँगूठी को छू रहा था···।

"तुमने पूना देखा है ?"

"न !"

"देखोगी ?"

"डाऽऽलिंग···।" आवेश में मेरे हाथ पर उसकी पकड़ सख्त हो गयी थी।

"मैं गैराज से कोई गाड़ी मैनेज कर लूंगा।···अगले वीक-एण्ड पर चलेंगे।" मैंने आहिस्ता से उसकी कमर अपने हाथ की गिरफ्त में ले ली थी—"यूं तो···बाम्बे-पूना हाइवे इज द बेस्ट हाइवे ऑव इण्डिया!"

उसने मेरे कंधे पर गाल टिकाकर खोयी-खोयी आवाज में कहा था—"आइस्सी···।"

···वेटर ने ट्रे टेबल पर रखी है···और मेरे इशारे पर कॉफी बनाकर कप सामने खिसका दिया है।···कप की ऊपरी गोलाई से भाप उठ रही है।···एक कश का धुआं मुंह में भरे-भरे झुककर कॉफी का एक घूंट लेता हूं···और धुआं और कॉफी, दोनों निगल जाता हूं।···एक सिहरन-सी होती है और पलकें मुंदने-सी लगती हैं। यहां बैठा हूं, लेकिन कानों में बार-बार लहरों के छपाकों की आवाज गूंज रही है।···बिल्डिंग तक छोड़ने के पहले शर्ली को हर बार किनारे पर ले गया हूं···जो कभी सूखा रहता था और कभी जिसे लहरें बार-बार भिगोने आती थीं···।

"मुझे समुन्दर पसन्द है," गीली रेत पर दो कदम नंगे पांव चलकर एक बार उसने कहा था, "तुम्हें?"

"इस बारे में कभी सीरियसली सोचा नहीं।" मैं बोला था।

"फिर भी?" उस दिन शायद वह कुछ न कुछ पूछते जाने के ही मूड में थी।

"हां, चीज अच्छी है।···पसन्द की जा सकती है।" मैंने भरसक मुसकान दबाते हुए अटक-अटककर कहा था और एक नजर उसके छोटे-छोटे पाँवों के निशान पर डाली थी—"अब यहां आ जाओ।···लहरें आ रही हैं।"

"लेट देम कम!" उसने दोनों हाथ कमर पर टिका बड़े हिरोइक अन्दाज में कहा था, लेकिन फिर सहसा दौड़ती हुई नजदीक आ गयी थी।···उसके कुछ बाल माथे पर बिखर गये थे और सांस तेज-तेज चलने लगी थी।

"यह देख रही हो?" हाथ थामकर उसे सहारा देते हुए मैंने पूछा था।

आया था···और कुछ देर बाद बाहर से लिफ्ट का दरवाजा बन्द करते हुए उसने धीरे से कहा था, "किडी, तुम आजकल बिलकुल खाली हो।···टेक ए चान्स !"

···मैं एक सिगरेट जलाता हूँ और तीली ऐश-ट्रे में डाल देता हूँ।··· कुछ क्षणों वह जलती रहती है, फिर सहसा भभककर बुझ जाती है···और धुएँ की पतली लकीर लहराती, बल खाती हुई ऊपर उठने लगती है···मैं कसमसाकर पहलू बदलता हूँ।···अब मुझे कहीं नहीं जाना है।···अब मुझे वक्त का कोई खयाल नहीं···और एक उड़ती-उड़ती नजर घड़ी पर डालता हूँ ···अगर शर्ली आ गयी होती, तो हम इस समय किसी सिनेमा-हाउस के कैरीडोर में घूमते हुए तस्वीरें देख रहे होते···या अन्दर बैठे फिल्म शुरू होने के इन्तजार में पॉटेटो-चिप्स चबाते हुए चल रहा इन्स्ट्रुमेण्टल सुन रहे होते···या अभी-अभी शुरू हुई फिल्म का राइट-अप पढ़ रहे होते।···डिनर के बाद टहलते हुए गेटवे ऑव इण्डिया तक जाते···फिर रात के अँधेरे में चमकती हुई नियान बत्तियाँ देखते हुए 'गुलमोहर' से 'ताज' की ओर···चाकलेट लेने के लिए कोने की छोटी-सी 'लिटिल पीक' में घुसते तो काउण्टर पर चश्मा लगाये खड़ी लड़की हमेशा की तरह मुस्कराती···और बाहर निकलने पर अँगुलियाँ ऊपर हवा में हिलाकर विश् करती···।

"वह लड़की मुझे अच्छी लगती है," एक बार शर्ली ने कहा था।

"यऽऽअ···शी इज स्वीट एण्ड सिम्पल !"

हम उस समय समुन्दर के किनारे कफ परेड में एक बेंच पर बैठे थे। नजदीक की बेंचें खाली थीं और अँधेरे में 'नेकलेस' की बत्तियाँ झिलमिला रही थीं। पीछे से कोई कार गुजरती, तो हॉर्न की आवाज या एंजिन की घरघराहट सुनाई दे जाती।···उसका दायाँ हाथ मेरे हाथ में था और मैं उसकी कलाई में बँधी नन्ही-सी घड़ी और बीच की अँगुली की बड़ी-सी अँगूठी को छू रहा था···।

"तुमने पूना देखा है ?"

"न !"

"देखोगी ?"

"डार्लिंग···!" आवेश में मेरे हाथ पर उसकी पकड़ सख्त हो गयी थी।

"मैं गैराज से कोई गाड़ी मैनेज कर लूंगा।···अगले वीक-एण्ड पर चलेंगे।" मैंने आहिस्ता से उसकी कमर अपने हाथ की गिरफ्त में ले ली थी—"यूं तो···बाम्बे-पूना हाइवे इज द बेस्ट हाइवे ऑफ इण्डिया!"

उसने मेरे कंधे पर गाल टिकाकर खोयी-खोयी आवाज में कहा था—"आइस्सी···।"

···वेटर ने ट्रे टेबल पर रखी है···और मेरे इशारे पर कॉफी बनाकर कप सामने खिसका दिया है।···कप की ऊपरी गोलाई से भाप उठ रही है।···एक कश का धुआं मुंह में भरे-भरे झुककर कॉफी का एक घूंट लेता हूं···और धुआं और कॉफी, दोनों निगल जाता हूं।···एक सिहरन-सी होती है और पलकें मुंदने-सी लगती हैं। यहां बैठा हूं, लेकिन कानों में बार-बार लहरों के छपाकों की आवाज गूंज रही है।···बिल्डिंग तक छोड़ने के पहले शर्ली को हर बार किनारे पर ले गया हूं···जो कभी सूखा रहता था और कभी जिसे लहरें बार-बार भिगोने आती थीं···।

"मुझे समुन्दर पसन्द है," गीली रेत पर दो कदम नंगे पांव चलकर एक बार उसने कहा था, "तुम्हें?"

"इस बारे में कभी सीरियसली सोचा नहीं।" मैं बोला था।

"फिर भी?" उस दिन शायद वह कुछ न कुछ पूछते जाने के ही मूड में थी।

"हां, चीज अच्छी है।···पसन्द की जा सकती है।" मैंने बरबस मुसकान दबाते हुए अटक-अटककर कहा था और एक नजर उसके छोटे-छोटे पांवों के निशान पर डाली थी—"अब यहां आ जाओ।···लहरें आ रही हैं।"

"लेट देम कम!" उसने दोनों हाथ कमर पर टिका बड़े हिरोइक अन्दाज में कहा था, लेकिन फिर सहसा दौड़ती हुई नजदीक आ गयी थी।···उसके कुछ बाल माथे पर बिखर गये थे और सांस तेज-तेज चलने लगी थी।

"यह देख रही हो?" हाथ थामकर उसे सहारा देते हुए मैंने पूछा था।

आया था···और कुछ देर वाद वाहर से लिफ्ट का दरवाजा वन्द करते हुए उसने धीरे से कहा था, "किडी, तुम आजकल विलकुल खाली हो।···टेक ए चान्स !"

···मैं एक सिगरेट जलाता हूँ और तीली ऐश-ट्रे में डाल देता हूँ।··· कुछ क्षणों वह जलती रहती है, फिर सहसा भभककर वुझ जाती है···और धुएँ की पतली लकीर लहराती, वल खाती हुई ऊपर उठने लगती है···मैं कसमसाकर पहलू वदलता हूँ।···अव मुझे कहीं नहीं जाना है।···अव मुझे वक्त का कोई खयाल नहीं···और एक उड़ती-उड़ती नजर घड़ी पर डालता हूँ ···अगर शर्ली आ गयी होती, तो हम इस समय किसी सिनेमा-हाउस के कैरीडोर में घूमते हुए तस्वीरें देख रहे होते···या अन्दर वैठे फिल्म शुरू होने के इन्तजार में पॉटेटो-चिप्स चवाते हुए चल रहा इन्स्ट्रुमेण्टल सुन रहे होते···या अभी-अभी शुरू हुई फिल्म का राइट-अप पढ़ रहे होते।···डिनर के वाद टहलते हुए गेटवे ऑव इण्डिया तक जाते···फिर रात के अँधेरे में चमकती हुई नियान वत्तियाँ देखते हुए 'गुलमोहर' से 'ताज' की ओर···चाकलेट लेने के लिए कोने की छोटी-सी 'लिटिल पीक' में घुसते तो काउण्टर पर चश्मा लगाये खड़ी लड़की हमेशा की तरह मुस्कराती···और वाहर निकलने पर अँगुलियाँ ऊपर हवा में हिलाकर विश् करती···।

"वह लड़की मुझे अच्छी लगती है," एक वार शर्ली ने कहा था।

"यऽऽअ···शी इज स्वीट एण्ड सिम्पल !"

हम उस समय समुन्दर के किनारे कफ पैरेड में एक वेंच पर वैठे थे। नजदीक की वेंचें खाली थीं और अँधेरे में 'नेकलेस' की वत्तियाँ झिलमिला रही थीं। पीछे से कोई कार गुजरती, तो हॉर्न की आवाज या एंजिन की घरघराहट सुनाई दे जाती।···उसका दायाँ हाथ मेरे हाथ में था और मैं उसकी कलाई में वँधी नन्ही-सी घड़ी और वीच की अँगुली की वड़ी-सी अँगूठी को छू रहा था···।

"तुमने पूना देखा है ?"

"न !"

"देखोगी ?"

"डाऽऽलिंग···!" आवेश में मेरे हाथ पर उसकी पकड़ सख्त हो गयी थी।

"मैं गैराज से कोई गाडी मैनेज कर लूंगा।···अगले वीक-एण्ड पर चलेंगे।" मैंने आहिस्ता से उसकी कमर अपने हाथ की गिरफ्त में ले ली थी—"यूं तो···बाम्बे-पूना हाइवे इज द बेस्ट हाइवे ऑव इण्डिया!"

उसने मेरे कंधे पर गाल टिकाकर खोयी-खोयी आवाज में कहा था—"आइस्सी···।"

···वेटर ने ट्रे टेबल पर रखी है···और मेरे इशारे पर कॉफी बनाकर कप सामने खिसका दिया है।···कप की ऊपरी गोलाई से भाप उठ रही है।···एक कश का धुआं मुंह में भरे-भरे झुककर कॉफी का एक घूंट लेता हूं···और धुआं और कॉफी, दोनों निगल जाता हूं।···एक सिहरन-सी होती है और पलकें मुंदने-सी लगती हैं। यहां बैठा हूं, लेकिन कानों में बार-बार लहरों के छपाकों की आवाज गूंज रही है।···बिल्डिंग तक छोडने के पहले शर्ली को हर बार किनारे पर ले गया हूं···जो कभी सूखा रहता था और कभी जिसे लहरें बार-बार भिगोने आती थीं···।

"मुझे समुन्दर पसन्द है," गीली रेत पर दो कदम नंगे पांव चलकर एक बार उसने कहा था, "तुम्हें?"

"इस बारे में कभी सीरियसली सोचा नहीं।" मैं बोला था।

"फिर भी?" उस दिन शायद वह कुछ न कुछ पूछते जाने के ही मूड में थी।

"हां, चीज अच्छी है।···पसन्द की जा सकती है।" मैंने भरसक मुसकान दबाते हुए अटक-अटककर कहा था और एक नजर उसके छोटे-छोटे पांवों के निशान पर डाली थी—"अब यहां आ जाओ।···लहरें आ रही हैं।"

"लेट देम कम!" उसने दोनों हाथ कमर पर टिका बडे हिरोइक अन्दाज में कहा था, लेकिन फिर सहसा दौड़ती हुई नजदीक आ गयी थी।···उसके कुछ बाल माथे पर बिखर गये थे और सांस तेज-तेज चलने लगी थी।

"यह देख रही हो?" हाथ थामकर उसे सहारा देते हुए मैंने पूछा था।

आया था···और कुछ देर वाद वाहर से लिफ्ट का दरवाजा वन्द करते हुए उसने धीरे से कहा था, "किडी, तुम आजकल बिलकुल खाली हो।···टेक ए चान्स !"

···मैं एक सिगरेट जलाता हूँ और तीली ऐश-ट्रे में डाल देता हूँ।··· कुछ क्षणों वह जलती रहती है, फिर सहसा भभककर बुझ जाती है···और धुएँ की पतली लकीर लहराती, वल खाती हुई ऊपर उठने लगती है···मैं कसमसाकर पहलू वदलता हूँ।···अव मुझे कहीं नहीं जाना है।···अव मुझे वक्त का कोई खयाल नहीं···और एक उड़ती-उड़ती नजर घड़ी पर डालता हूँ ···अगर शर्ली आ गयी होती, तो हम इस समय किसी सिनेमा-हाउस के कैरीडोर में घूमते हुए तस्वीरें देख रहे होते···या अन्दर वैठे फिल्म शुरू होने के इन्तजार में पॉटेटो-चिप्स चवाते हुए चल रहा इन्स्ट्रुमेण्टल सुन रहे होते···या अभी-अभी शुरू हुई फिल्म का राइट-अप पढ़ रहे होते।···डिनर के वाद टहलते हुए गेटवे ऑव इण्डिया तक जाते···फिर रात के अँधेरे में चमकती हुई नियान वत्तियाँ देखते हुए 'गुलमोहर' से 'ताज' की ओर···चाकलेट लेने के लिए कोने की छोटी-सी 'लिटिल पीक' में घुसते तो काउण्टर पर चश्मा लगाये खड़ी लड़की हमेशा की तरह मुस्कराती···और वाहर निकलने पर अँगुलियाँ ऊपर हवा में हिलाकर विश् करती···।

"वह लड़की मुझे अच्छी लगती है," एक वार शर्ली ने कहा था।

"यSSअ···शी इज स्वीट एण्ड सिम्पल !"

हम उस समय समुन्दर के किनारे कफ पैरेड में एक वेंच पर वैठे थे। नजदीक की वेंचें खाली थीं और अँधेरे में 'नेकलेस' की वत्तियाँ झिलमिला रही थीं। पीछे से कोई कार गुजरती, तो हॉर्न की आवाज या एंजिन की घरघराहट सुनाई दे जाती।···उसका दायाँ हाथ मेरे हाथ में था और मैं उसकी कलाई में वँधी नन्ही-सी घड़ी और वीच की अँगुली की वड़ी-सी अँगूठी को छू रहा था···।

"तुमने पूना देखा है ?"

"न !"

"देखोगी ?"

"डार्लिंग···!" आवेश ने मेरे हाथ पर उसकी पकड़ सख्त हो गयी थी।

"मैं गैराज से कोई गाड़ी मैनेज कर लूंगा।···अगले वीक-एण्ड पर चलेंगे।" मैंने आहिस्ता से उसकी कमर अपने हाथ की गिरफ्त में ले ली थी—"यूं तो···बाम्बे-पूना हाइवे इज द बेस्ट हाइवे ऑव इण्डिया!"

उसने मेरे कंधे पर गाल टिकाकर खोयी-खोयी आवाज में कहा था—"आइस्सी···।"

···वेटर ने ट्रे टेबल पर रखी है···और मेरे इशारे पर कॉफी बनाकर कप सामने खिसका दिया है।···कप की ऊपरी गोलाई से भाप उठ रही है।···एक कश का धुआं मुंह में भरे-भरे झुककर कॉफी का एक घूंट लेता हूं···और धुआं और कॉफी, दोनों निगल जाता हूं।···एक सिहरन-सी होती है और पलकें मुंदने-सी लगती हैं। यहां बैठा हूं, लेकिन कानों में बार-बार लहरों के छपाकों की आवाज गूंज रही है।···बिल्डिंग तक छोड़ने के पहले शर्ली को हर बार किनारे पर ले गया हूं···जो कभी सूखा रहता था और कभी जिसे लहरें बार-बार भिगोने आती थीं···।

"मुझे समुन्दर पसन्द है," गीली रेत पर दो कदम नंगे पांव चलकर एक बार उसने कहा था, "तुम्हें?"

"इस बारे में कभी सीरियसली सोचा नहीं।" मैं बोला था।

"फिर भी?" उस दिन शायद वह कुछ न कुछ पूछते जाने के ही मूड में थी।

"हां, चीज अच्छी है।···पसन्द की जा सकती है।" मैंने भरसक मुसकान दबाते हुए अटक-अटककर कहा था और एक नजर उसके छोटे-छोटे पांवों के निशान पर डाली थी—"अब यहां आ जाओ।···लहरें आ रही हैं।"

"लेट देम कम!" उसने दोनों हाथ कमर पर टिका बड़े हिरोइक अन्दाज में कहा था, लेकिन फिर सहसा दौड़ती हुई नजदीक आ गयी थी।···उसके कुछ बाल माथे पर बिखर गये थे और सांस तेज-तेज चलने लगी थी।

"यह देख रही हो?" हाथ थामकर उसे सहारा देते हुए मैंने पूछा था।

"क्या ?"

मैंने अपने कोट के कालर की ओर इशारा किया था।

"यह क्या है ?"

"तुम्हारी लिपस्टिक का निशान।"

उसने दो-तीन बार जल्दी-जल्दी पलकें झपकायी थीं और कुछ काँपती हुई-सी अँगुलियों से माथे पर बिखरी लटें सँवारने की कोशिश की थी। उसके गालों पर लाली आ गयी थी और होंठों के कोने हलके-हलके फड़क रहे थे।…कोहनी मोड़कर मैंने उसका चेहरा अपने सामने किया था।…मेरे और उसके होंठों के बीच बस दो इंच का फासला था…कि एक घूमती हुई कार की तेज हेडलाइट में गीली रेत चमकने लगी थी।…वह अपना हाथ छुड़ाकर अलग बैठ गयी थी और हाथों से घुटने बाँध लिये थे।

मैंने जेब से चॉकलेट निकालकर उसकी ओर बढ़ाया था। उसने नीचे ही देखते हुए चॉकलेट लिया था…और रैपर फेंकने को ही थी कि मैंने उससे रैपर लेकर जेब में रख लिया था।

वह मेरी ओर देखते हुए शरमायी मिठास से हँसी थी—"तुम ये रैपर हमेशा रख लेते हो।…आखिर क्यों ?"

"मैं इनका एलबम बना रहा हूँ जो हमारे…हमारा…आइ मीन टु से…रेकॉर्ड होगा।" मैंने अटकते हुए किसी तरह वाक्य पूरा कर दिया था।

वह मेरा मतलब समझकर झेंप गयी थी।"यू आर क्रेजी…!" उसने प्यार से कहा था। उसे मेरी यह हरकत बहुत भली लगती है।

…सिगरेट का टुकड़ा अब इतना छोटा हो गया है कि अँगुलियों पर आँच महसूस होने लगी है।…उसे एश-ट्रे में फेंकता हूँ, तो धुएँ की मोटी लकीर लहराती, बल खाती हुई ऊपर उठने लगती है।…याद आ रहा है कि यहाँ आने की मुझे कितनी जल्दी थी !…गैराज से सीधा कमरे में पहुँचा था और दस मिनट में तैयार होकर यहाँ आ गया था। बीच में 'लिटिल पीक' से चॉकलेटें ली थीं। पाँच का नोट काउण्टर पर रखते ही बाहर सड़क पर डबल डेकर की घरघराहट सुनाई दी थी और मैं तेजी से दरवाजे की ओर बढ़ गया था।

"बाकी पैसे तो···" चश्मेवाली लड़की चौंककर जोर से बोली थी।

"बाद में ले लूंगा···" कहता हुआ मैं फुटपाथ पर आ गया था।

···अपना वह आवेश और अधीरता अब कितनी बेमानी मालूम हो रही है! ···अपनी ही इस निरर्थक भागदौड़ को मैं होंठों पर वक्र मुसकान लिये बहुत ऊपर से देख रहा हूँ।···अपने को झुठलाने की कोशिश कर रहा हूँ कि वह सारा आवेश अपने से ही दिखाया था। दरअसल मुझे तभी अन्दाज था कि यह होगा···और इस तरह जो हुआ है, वह अकस्मात् नहीं है, एक धक्का नहीं है जो सहसा मुझे लगा···एक सिलसिले की कड़ी है, अपने क्रम पर उभरकर ऊपर आनेवाली···इसीलिए शीशे के दरवाजे से जूली को आते देख मुझे ताज्जुब नहीं हुआ था और जब उसने पर्स से निकालकर लिफाफा मेज पर रख दिया था, तो मैंने उसकी ओर एक नामालूम-सी निगाह डाली थी और उसे खोलने का जरा भी आग्रह दिखाये बिना जोन से वेटर को बुलाकर उसके लिए कॉफी और सैण्डविचेज का ऑर्डर दिया था।

जूली बार-बार घड़ी की ओर देख रही थी—"नो···मैं कुछ लूंगी नहीं! ···मैं लेट हो गयी हूँ।···डिक मेरा वेट कर रहा होगा।"

"अऽऽय···सिट डाउन बेबी!" मैंने लापरवाही से कहा था।

"खत तो पढ़ लो।" लिफाफे के प्रति मेरे रवैये से उसे झुंझलाहट हो रही थी।

"ओक्के···ओक्के!"

मैंने चौड़ी तरफ से लिफाफे का एक पतला-सा कोना फाड़कर ऐश-ट्रे में डाल दिया था और एक फूंक मारकर किनारे की चिपक गयी परतें खोली थीं।···मेरा मन हुआ कि जोर से ठहाका लगाऊँ, 'लियोपोल्ड' को कहकहों से गुंजा दूं। एक अरसे से मैंने इतना बढ़िया मजाक नहीं सुना था···एक युवा, आकर्षक स्टेनो अपनी गर्ल-फ्रेण्ड के साथ वीक-एण्ड पर महाबलेश्वर जाये! ···मैंने खत लिफाफे में रखा था और लिफाफा मेज पर···और मेरे होंठों पर एक मुसकान आ गयी थी। जूली ने जल्दी-जल्दी मुझे समझाने की कोशिश की थी कि खत में झूठ कुछ भी नहीं है।···मैंने उसकी कोई बात नहीं कही थी···मैंने एक लफ्ज भी नहीं कहा था।···

आँखों के आगे वार-वार किसी नयी कार में आगे बैठी, खिड़की पर कुहनी टिकाये शर्ली की तस्वीर आ रही थी—हवा के झोंकों से उड़-उड़ जाती वालों की लटें सँवारती हुई, माला के वड़े-वड़े मोतियों को हलके-हलके छूती हुई—उसकी वगल में कोई भी हो सकता था—उसकी फर्म का मैनेजर···या ए, वी, सी, कोई भी—वम्बई वहुत वड़ी है।

···अचानक ही मन में सूनापन भरने लगा था।···शर्ली···उसकी मुसकराहट···उसका वात करने का ढंग···उसकी मोतियों की माला··· घड़ी, अंगूठी—उसकी याद वहुत ही हलकी और सतही लग रही थी और महसूस हो रहा था कि इन सवका मेरी खुशी से कोई सरोकार नहीं है···।

···मैं अनमने ढंग से जूली को वोलते हुए देख रहा था···उसके हिलते हुए लाल-लाल होंठ, उजले दाँतों की कतार, वड़ी-वड़ी आँखें, जल्दी-जल्दी झपकती हुई पलकों की लम्वी वरौनियाँ···वह कॉफी लिये विना उठ गयी थी।···मैं उसकी अनजाने ही शोख हो रही चाल का ग्रेस देख रहा था···और मेरे मुँह से एक ठण्डी साँस निकल गयी थी···काश, यह लड़की डिक की फियान्स न होती!

···वेटर ने पानी का गिलास खट से टेवल पर रखा है।···सिगरेट का टुकड़ा ऐश-ट्रे में फेंकते हुए गिलास की ओर हाथ वढ़ाता हूँ और इशारे से विल लाने के लिए कह देता हूँ।···सिगरेट का पैकेट कोने की ओर फिसल गया है और माचिस आड़ी खड़ी है।···एक घूँट लेकर गिलास टेवल पर रख देता हूँ।···शुगर-पॉट और ऐश-ट्रे के वीच में लिफाफा तिरछा हो गया है।···इसका रंग कुछ फीका-सा है, जैसे काफी दिनों कागजों में दवा रहा हो। लेटर-पेपर कफन की तरह सफेद है; न कोई रंग है न सुगन्ध···और लिखावट काफी भद्दी है···सिर्फ दो सतरें टेढ़ी-मेढ़ी, अक्षरनुमा लकीरों के वीच मेरे आगे एक परायी पुरानी कार उभर रही है···ह्वील पर मैं हूँ, एक दिन की रंगीन छुट्टी के उन्माद में··· और मेरी वगल में···जेव में रखी चॉकलेटों को हलके-से छूता हुआ अपने आप ही वुदवुदाता हूँ—"आइ विल हैव टू मैनेजर···"

···विल पे करके वाहर निकल आता हूँ। ···अँधेरा हो चुका है और दुकानों पर नियॉन वत्तियाँ झिलमिला रही हैं।···सड़क पर वदस्तूर का रें-

बसें आ-जा रही हैं···हॉर्न की आवाज और एंजिन की घरघराहट···आगे आती जाती हेडलाइट···और पीछे फिसलती हुई पिछली बत्तियाँ···दुकानों के शो-केसो पर अनमनी नजर डालता हुआ मैं फुटपाथ पर खामोश चल रहा हूँ।···सिगरेट जलाकर एक लम्बा कश लेता हूँ, तो अकस्मात् धुआँ गले में फँस जाता है, साँस रुकती-सी महसूस होती है और मुझे खाँसी आने लगती है।···अलग एक खम्भे से टिककर लगातार खाँसे चला जाता हूँ और आँखों की कोरों से पानी बहने लगता है।···मैं अपने को बहुत थका हुआ महसूस कर रहा हूँ और मेरा सिर भारी-भारी-सा हो रहा है। धीरे-धीरे चलता हुआ सहसा 'लिटिल पीक' के आगे ठिठक जाता हूँ। दुकान खाली है और चश्मेवाली लड़की काउण्टर पर खुले एक रजिस्टर पर झुकी है।

जूतों की आहट ने चौंककर वह सिर उठाती है और मुसकराने लगती है।

"आप एकदम ही चले आये!" उसने ड्राअर में नोट और कुछ पैसे निकालकर मेरी ओर खिसका दिये हैं।···वह मेरे पीछे देख रही है··· लेकिन जब कोई भी नहीं दिखाई देता, तो सहमा मेरी ओर देखने लगती है।···खाँसी से मेरा चेहरा लाल हो गया है और मेरी आँखें शायद अभी भी गीली हैं।···देखते-देखते उसकी निगाहों में कुछ बदल-सा जाता है और होठों पर उदास मुसकान सिमट आती है।

"दिस इज लाइफ, ब्वॉय!···टेक इट ईजी!" उसने कुछ क्षणों रुककर बुजुर्गाना अन्दाज में कहा है।

"ह्वऽऽट···डु यू मीऽऽन ?"

"टेक इट ईजी, ब्वॉय···टेक इज ईजी!"

मैं एकटक उसकी ओर देख रहा हूँ। मेरा चेहरा बिल्कुल भावहीन है।

"आपको कोई गलतफहमी हुई है।···शी इज माइ सिस्टर।"

"सिस्टर ?"

"सिस्टर।"

मैं काउण्टर पर टिके उसके हाथ देख रहा हूँ—पतले, सुडौल हाथ··· दायीं कलाई में बँधी नन्ही-सी घड़ी, एक अँगुली में अँगूठी···लम्बी-लम्बी

अँगुलियाँ, लम्बे-लम्बे नाखून···मेरी निगाह ऊपर को चढ़ती हुई उसके चेहरे पर आ जाती है···खूब गोरे चेहरे पर काले फ्रेम का चश्मा···माथे पर बिखरी दो-तीन घुँघराली लटें···बायें गाल पर एक नन्हा-सा तिल··· और पतले-पतले तराशे हुए होंठ, जैसे सिर्फ चूमने के लिए बने हों !

···नोट उठाने के लिए झुकते हुए कमीज और लैदर-जैकेट के बीच दबे कॉमिक के चिकने पन्ने सरसरा उठे थे।

"आर यु इण्टरेस्टेड इन कॉमिक ?" मैंने सहसा पलटकर पूछा था। ···मैं बेझिझक उसके चेहरे की ओर देख रहा था जहाँ चश्मे के काँचों में ट्यूब का अक्स झिलमिला जाता था।

"नो !" आवाज समतल थी—न ऊँची, न नीची।

लम्बे-लम्बे कदम रखता हुआ मैं बौखलाकर बाहर निकल आया था ···हाथ पैण्ट की जेब में डाले थे···और लिफाफे को दो अँगुलियों में थाम कर चाकलेट के रैपरों की तरह जमीन पर उछाल दिया था।□

अक्स

बायीं ओर की बड़ी खिड़की खुली है और बाहर लॉन का एक हिस्सा दिखाई दे रहा है, हरी साड़ी के आँचल की तरह, जिसके किनारे-किनारे मेंहदी की ऊँची घनी कतार है। सफाई से तराशी गयी ऊपरी सतह पर पीली-सी धूप का एक टुकड़ा अलसाया पड़ा है। लॉन के एक सिरे पर रबर का भारी पाइप घसीट दिया गया है, जिसमें पानी की मोटी धार निःशब्द बह रही है। सड़क के रेस्तराँ तक आने वाले रास्ते पर लाल बजरी बिछी है और दोनों ओर गमलों की कतार है।

…दुपट्टा सरकता है, तो उसे सँवारते हुए मुड़ती हूँ…वे उसी तरह बैठी हैं, मेज पर दोनों कुहनियाँ टिकाये, कप में धीरे-धीरे चम्मच चलाते हुए…पलकें नीचे झुकी हैं और रूखे बालों की दो-तीन लटें माथे पर बिखर आयी हैं।…वे सामने हैं, लेकिन फिर भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा कि मैं उनसे मिली हूँ, उनके साथ हूँ। कितने दिनों के बाद आज… मन-ही-मन हिसाब लगाती हूँ, तीन साल तो पूरे हो गये हैं और ऊपर से शायद तीन या चार महीने…वह अप्रैल का महीना था, चौथे हफ्ते का

दिन···जब इम्तहान खत्म होने के बाद आख़िरी बार उनसे मिली।
···

"आप बीच में इधर आयी तो होंगी ?" सहसा पूछ लेती हूँ।

"हाँ···दो बार···।" वे आहिस्ता से कहती हैं, कुछ सोचती हुई-सी, "ममी की तबीयत खराब हो गयी थी।"

"कब की बात है ?" कोमलता से पूछती हूँ।

"इसी साल तो···अगस्त में अटैक हुआ था।"

जी में आता है कि उलाहना दे दूँ···वे दो बार आयीं और मुझसे मिलीं भी नहीं ! उनकी ओर देखती हूँ, तो लगता है जैसे उन्हें इस सम्बन्ध में मेरी ओर से किसी शिकायत की अपेक्षा नहीं। अगर मैंने कुछ कहा भी, तो वे शायद यही सोचेंगी कि मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ। मेरी जगह कोई और लड़की होती, तो शायद जिन्दगी-भर उनसे मिलना पसन्द न करती ···लेकिन मेरे मन में तो लगातार यही बात चक्कर काट रही है कि वे इस शहर में दो बार आयीं और मुझ से मिलीं भी नहीं और मैं हूँ कि उनके बारे में कितना-कितना सोचती रहती हूँ, जाने-अनजाने···और इस बार भी यह महज एक संयोग ही है कि उनसे मिलना हो गया, वर्ना इतने बड़े शहर में क्या पता चलता है कि कौन आया और कौन गया।···उनका घर भी तो शहर के एक कोने में है।···

"मैं एक बार आपकी तरफ से निकली थी," मैं कहती हूँ, "लेकिन बंगला बन्द था।"

"हाँ···बीच में ममी हम लोगों के साथ थीं···और पापा तो ज्यादात दौरे पर ही रहते हैं।" फिर कुछ रुककर बोलीं, "उस तरफ कौन है ? कोई फ्रेण्ड ?"

"जी, मेरी एक सहेली है···प्रिया···" महसूस करती हूँ कि स्व अनजाने ही आ गये उत्साह से उनके होंठों पर एक बारीक मुस्कान आयी है, "आप शायद जानती हों, उसके फादर डाक्टर अस्थाना

"हाँ हाँ···नाम सुना है।" वे सहमति में सिर हिलाती हैं।

"दरअसल इस वक्त यहाँ आने के लिए उसने ही कहा था।"

"आइसक्रीम का प्रोग्राम है ?" उन्होंने उदास मुस्कराहट से

मैंने भी होंठों पर एक मुस्कान लाकर बात आगे बढ़ा दी, "आते समय लगातार यही सोच रही थी कि देर हो जाने से प्रिया नाराज होगी, अन्दर घुसते-घुसते एक बहाना भी सोच लिया था, लेकिन अचानक आपको देखा, तो···"

कुछ क्षण खामोश रहकर उन्होंने कहा है, "हम लोग इसी तरह मिलते हैं···क्यों ?" और मेरी ओर देखकर न जाने कैसे मुस्कराती हैं···कितनी गहरी मुस्कराहट···! सरकता हुआ दुपट्टा सँवारती हूँ और आँखों के आगे नवम्बर की वह शाम उभरने लगती है···यूनिवर्सिटी में एक प्रोग्राम था ! भैया ने कहा था कि मेरे साथ ही चली चलना, लेकिन दोपहर को जो आप निकले, तो शाम के छह बजे तक शक्ल नहीं दिखायी। हारकर मुझे अकेले ही आना पड़ा। गेट के पास रिक्शे से उतरी, तो यूनियन हॉल से आता हुआ शोर सुनायी दिया। बरामदे में कदम रखा, तो देखा कि हॉल ठसाठस भरा है। सामने एक ओर लड़कियों के लिए जगह थी। दरवाजे पर ठिठककर कोई परिचित चेहरा खोजने लगी, जो मेरे लिए अपनी कुर्सी पर जरा-सी जगह कर दे···लेकिन कोई नजर नहीं आया !···इसी बीच लड़के अपनी आदत से मजबूर होकर फब्तियाँ कसने लगे थे कि यहाँ आ जाइए, जगह खाली है।···परेशानी और गुस्से से आँसू आने लगे। तभी दूसरी कतार में कोने पर बैठी एक लड़की ने हाथ हिला कर मुझे बुलाया ···एक बार···दो बार···चेस्टर की जेबों में हाथ डाले, सिर झुकाये मैं उसके निकट पहुँची, तो उसने एक ओर खिसककर मुझे अपने साथ बैठा लिया, फिर एक बाँह से घेरकर, कान से मुँह सटा, मुस्कराते हुए धीरे से कहा, "क्यों जी, जब हमने पहली बार बुलाया, तभी क्यों नहीं आयी ?···शरमा रही थी ?" मैं झेंपकर कुछ भी न कह सकी !···प्रोग्राम के दौरान नजर बचा-बचाकर उसे देखा···लड़की खूब सुन्दर थी। दुबली-पतली, गोरे रंग की···तीखे नक्श, बड़ी-बड़ी काली आँखें···कसे हुए आसमानी कॉर्डिगन में बहुत कोमल और कमनीय !···मुझसे बड़ी लग रही थी।···एम०ए० में होगी, मैंने मन-ही-मन सोचा।···प्रोग्राम खत्म हुआ, तो वह वैसे ही बाँह में लिये-लिये मुझे बाहर ले आयी। मेनगेट से लाइब्रेरी की ओर जाने वाली सड़क पर लम्बी-सी कार खड़ी थी। उसने पिछले दरवाजे के हैण्डिल

रखा, तो मैंने अटकते हुए इजाजत चाही !···
"चलो, तुम्हें घर तक छोड़ दूँ।" बैठने के लिए इशारा करते हुए, बीच में ही कहा।···फिर खट्-से दरवाजा बन्द करते हुए, गर्दन कर पीछे देख रहे शोफर से बोली, "म्योर रोड से चलना।"

"आपको कैसे पता कि मैं वहाँ रहती हूँ?" मैंने चौंककर कहा।

उन्होंने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया था।···प्रोफाइल से मालूम हुआ हँस रही हैं।···दूसरे दिन लाल पेन्सिल के लिए भैया की मेज की तलाशी ली, तो ड्राअर में नीले लिफाफे से एक तस्वीर निकली, जिसमें वही बड़ी-बड़ी आँखें किसी गहरे सोच में डूबी हुई थीं।···तस्वीर मैंने अपने पास रख ली और घर-भर को दिखाने की धमकी देकर भैया से सब उगलवा लिया···नाम, पता-ठिकाना···उन्हीं की क्लासफेलो थी और मुझे भैया के साथ ही एक चैरिटी शो में देखा था।···दूसरे दिन लायब्रेरी के सामने पाँच-छह लड़कियों के एक गुच्छे में उन्हें देखा। मुझ पर निगाह पड़ते ही वे ठिठक कर पीछे रह गयीं। निकट पहुँचकर, निचला होंठ दाँतों तले दबा, भरसक मुस्कान दबाते हुए मैंने सलाम किया। वे समझ गयीं कि मैं सब जान गयी हूँ।···बुरी तरह झेंपीं, मेरा बढ़ा हुआ हाथ थामकर, किसी तरह 'हलो' कहा···और गोरे-गोरे गाल सुर्ख हो गये।···

···सड़क पर सहसा एक कार ब्रेक लगाकर रोकी गयी है···और कुत्ता भौंकता हुआ एक ओर भाग गया है।···दूसरी ओर की दूकानों के बड़े-बड़े रंगीन बोर्ड अब पहले की तरह धूप में नहीं चमक रहे, बरामदों में पड़े भारी काले पर्दे भी हटा लिए गये हैं और कोने पर एक लड़का सँभाल-सँभाल कर पत्रिकाओं का स्टैण्ड रख रहा है।···सड़क पर चहल-पहल बढ़ने लगी है। कारें सरसराती हुई गुजर जाती हैं और बिछुड़े हॉर्न की कँपकँपाती लरजती आवाज यहाँ तक आ जैसे बेदम हो जाती है।···

"अब यह शहर काफी मॉडर्न हो गया है।" उन्होंने धीरे से कहा है··· जैसे सिर्फ कुछ कहने के लिए ही।

"हूँ ऽऽ..."

"कुछ इण्डस्ट्रीज भी शुरू हो रही हैं न ?" वे कुछ रुककर कहती हैं।
...आवाज समतल है, उसमें कोई उतार-चढाव नहीं।

"हां।"

कुछ क्षणों तक वे एकटक मेरी ओर देखती हैं...और आँखें तरल हो आती हैं।..."डार्लिंग..." धीरे से मेरा हाथ थाम, भीगे स्वर मे उन्होंने कहा है, "तुम भी मुझसे नाराज हो ?"

"यह आप क्या कह रही हैं...!" मैं अटक-अटककर, आहत हो बोली हूं, "जहाँ तक मेरा सवाल है..." सहसा टूटकर कहा है, "अब मैं कैसे यकीन दिलाऊँ..." और झुककर उनकी उल्टी, नर्म हथेली पर होंठ टिका दिये हैं।...

...मीठे स्पर्श-जैसे वे चन्द दिन, जो उनके साथ गुजरे! ...हम दोनो कितने करीब आ गये थे।...यूनिवर्सिटी मे साथ-साथ घूमते, लॉन में फव्वारे के निकट, पीपल की घनी छाया में घण्टो बैठे रहते।...जिस दिन छुट्टी होती, सुबह से उनकी कार लेने आ जाती।...उनका बँगला हमेशा खाली-सा रहता। बीमार माँ अपने कमरे में होतीं और पापा दौरे पर।...हम बैडमिण्टन खेलते, कहानियाँ पढ़ते, नये रेकॉर्ड सुनते, आइस्क्रीम खाते, पिक्चर देखते...या उनके कमरे में, खिडकी के शीशों पर बारिश की एकरस आवाज सुनते हुए, घण्टो बातें करते।...वे शरमाकर लाख 'बस, बस' करतीं, हथेलियो में सिन्दूरी हो रहा चेहरा छुपा लेती, मेरे गाल पर चपत लगाती, लेकिन मैंने यह बहुत अच्छी तरह जाहिर कर दिया था कि जब वे हमेशा-हमेशा के लिए मेरे घर में आ जायेंगी, तो मैं उनका बहुत-बहुत खयाल रखूँगी, मैं उनको कभी कोई तकलीफ नही होने दूंगी, मैं सारा का सारा काम करूँगी, उनके लिए अपना कमरा खाली कर दूंगी, उन्हे रोज शाम को घुमाने ले जाया करूँगी...और वह सब कुछ करूँगी, जो वे चाहेंगी, ताकि उन्हे कभी अपने निर्णय पर पछताने का मौका न मिले।
...यह सब कहते-कहते कभी मेरी आवाज भीग जाती, तो सहसा वे हँस-

कर कहतीं, "डार्लिंग ! तुम तो इतनी सीरियस हो···।"

"नेचुरली !" मैं जवाब देती, "हम आपको इतना चाहते भी तो हैं।"

···अपने इम्तहान के दौरान बीस-बाईस दिनों तक उन्हें देखा भी नहीं। फिर जिस दिन आखिरी पर्चा हुआ, उसी दिन पहुँची।···देर तक हम लोग बातें करते रहे।···चुप-चुप वे हमेशा ही रहती थीं, लेकिन उस दिन कुछ संजीदा भी लगीं। मैं किसी बात पर हँसती, तो वे बड़े भूले-भूले ढंग से मुस्करा देतीं !···बीच में एक-आध बार एकटक मुझे देखा, होंठ कुछ काँपे···लगा कि अन्दर कुछ है, जो उफनकर बाहर आना चाहता है, ···लेकिन ज्यों ही अपने चेहरे पर मेरी नजर महसूस की, एकदम चौंककर दूसरी ओर देखने लगीं···और जल्दी-जल्दी अटकते हुए अपने किसी पेपर की बात शुरू कर दी।···शाम ढली तो बोलीं, "मेरी एक सहेली की साल-गिरह है।···तुम जल्दी से कपड़े बदल लो।···वहाँ चलेंगे।"

"कौन-सी सहेली ?" मैंने पूछा।

"तुम जानती नहीं होगी।" वार्ड रोब की ओर बढ़ते हुए उन्होंने कहा, "यूनिवर्सिटी में नहीं है।" और हैंगर पर लटकती एक साड़ी बाहर निकाली, उसे उलट-पलटकर देखा, फिर बोलीं, "यह ठीक रहेगी।"

"न···साड़ी नहीं···" मैं ठुकनी, "हमें शरम लगती है।"

"कैसी पगली लड़की है ! ···क्या जिन्दगी-भर सलवार-कमीज पहनेगी ?"

"हमें पहननी भी नहीं आती।"

"तो हम पहना देते हैं।" उन्होंने मेरे लहजे की नकल की, "चलो, फेंको दुपट्टा।···वन···टू···"···कुछ मिनटों बाद गहरे चाकलेटी साड़ी-ब्लाउज में, चप्पलें छूता हुआ पल्ला सँभालते हुए, आईने के आगे खड़ी थी। चोटियाँ खोलकर, कानों को ढँकता हुआ बड़ा-सा जूड़ा बाँध दिया गया था और गले में बड़े-बड़े मोतियों की एक माला पहना दी गयी थी।···वे झुककर साड़ी की पटलियाँ ठीक करने के बाद सीधी खड़ी हुईं, दो कदम पीछे हटकर, ऊपर से नीचे तक कई बार मुझे देखा, फिर एक गहरी साँस लेकर कहा, "सच···बहुत प्यारी लग रही हो !"

अपनी झेंप मिटाने के लिए कुनमुनाते हुए "अब चलें ?" कहकर मैं

कुछ हिली-डुली।

उन्होंने कुछ सुना ही नहीं ! ···वैसे ही एकटक देखते हुए बिल्कुल नजदीक आ गयीं, "तुम दोनों के फीचर्स कितने मिलते हैं···" नाजुक हथेलियों में मेरा चेहरा थामकर, आहिस्ता-से बोलीं, "और आँखें तो जैसे···" कहते-कहते सहसा झुकीं और काँपते, गर्म-गर्म होंठ मेरी फड़फड़ाती पलकों पर रख दिये ! ···

यह आखिरी मुलाकात थी ! ···

खिड़की में नजर आ रहा आसमान बिल्कुल साफ है···जैसे हल्के नीले रंग का घोल जमा दिया गया हो। सूरज डूब चुका है और दूर, एक निचले कोने में लाली के कुछ छींटे हैं।···मेहदी की ऊपरी सतह से धूप का टुकड़ा गायब हो चुका है और लॉन में पड़े पाइप से पानी की धार अभी भी बह रही है।···लाल बजरी पर टायरों के निशान हैं। दोनों ओर रखे गमलों के पौधे हल्की हवा में धीरे-धीरे हिल रहे हैं।···

"तुम्हारा रिजल्ट कब तक आयेगा ?" वे मेरी ओर देखकर तनिक मुस्करायी हैं।

"बस, आठ-दस रोज और हैं।" मैं कहती हूँ···फिर झुककर कप से एक घूंट भरती हूँ।

"अब क्या इरादा है ?" वे कुछ रुककर पूछती हैं, "रिसर्च करोगी ?"

मेज के काले काँच पर लम्बे नाखूनों से मैं हल्की 'टिक्-टिक्' करती हूँ। "दरअसल अभी कुछ तय नहीं है···" अटकते हुए मैंने कहा, "चाहूँ तो रिसर्च भी कर सकती हूँ···बट आए'म नॉट इण्टरेस्टेड···"

"फिर ?"

"कहा न···कि अभी कुछ सोच नहीं पा रही हूं।" घड़ी की नन्ही-सी चाबी मैंने अनमने भाव से घुमायी है, "भैया को लिखा है। जो वे ठीक समझेंगे ···" मैं सिर झुकाये, एकटक प्लेट के फूल को देख रही हूँ···टेढ़ी-मेढ़ी, काली लकीरों का फूल···कैसी अजीब बनावट है इसकी···शायद ये सिर्फ झूठी सजावट के लिए उभार दिये जाते हैं, कभी किन्हीं क्यारियों में

नहीं महकते···बस, इसी तरह बेजान खुद को और दूसरों को धोखा दिये जाते हैं।

"इन दिनों कहाँ हैं?"···आवाज कैसी हो गयी है?

···मैं सामने देखना चाहती हूँ, लेकिन अनायास पलकें ऐसी बोझिल महसूस होती हैं कि उठाये नहीं उठतीं···"कलकत्ता।" सिरे पर रखे गिलास को लम्बी-लम्बी उँगलियों से छूते हुए मैंने कहा है। ऊपर पंखे से आती हवा की लहरें पानी की ऊपरी सतह को धीरे-धीरे कँपा रही हैं।···जानना चाहती हूँ कि उनकी नजर कहाँ है···मेरे ऊपर···या मुझसे बचने की कोशिश में केबिन के खिंचे पर्दे या खुली खिड़की पर फिसलती हुई···

···वे सिर झुकाये हुए, एकटक पर्स की ओर देख रही हैं, एक हाथ की स्थिर उँगलियाँ स्ट्रैप से उलझी हैं और दूसरे हाथ की बँधी मुट्ठी पर मुँह टिका है। एक उँगली की अँगूठी का कड़ा-सा नग गाल में चुभ रहा है।··· देखते-देखते जैसे मुझे पहली बार एहसास होता है कि वे बदल गयी हैं।··· आँखों के इर्द-गिर्द बारीक झुर्रियाँ फैली हैं और गालों की हड्डियाँ हल्के-हल्के उभर आयी हैं। दुबली, दाहिनी कलाई की तीन सफेद चूड़ियाँ काफी नीचे फिसल गयी हैं और मुट्ठी के शिथिल बँधाव में विवश-सा खुलापन है।···कमजोरी चेहरे की हर मुद्रा और देह की हर हरकत से झलकती है, चाहे वे गहरी उदासी-भरी आँखों से चुपचाप सामने देखें, आँखों पर बड़ी-बड़ी पलकों का साया लिये व्यथा से मुस्करायें या किसी बात की प्रतिक्रिया में ऊपरी होंठ धीरे-धीरे काँपने लगें···चाहे वे साड़ी का पल्लू ठीक करें, माथे पर आ गिरी रूखी लट सँभालें···या आहिस्ता से, दुबली-लम्बी उँगलियों को हिलाते हुए जूड़े को टटोलें!···

"कलकत्ता गयी हो तुम?"···निगाहें उठाकर उन्होंने मेरी ओर देखा है···और होंठों पर करुणा-भरी उदास मुस्कान सिमट आयी है···लेकिन काली आँखों की तरलता में जो प्रश्न तैर रहा है, इस सारे अनमनेपन के बावजूद, उसे समझने में मुझसे भूल नहीं होती। कुछ रुककर कहती हूँ, "अभी तक तो नहीं, लेकिन अब जल्द ही इरादा है।···भैया अकेले वहाँ बहुत बोर होते हैं।" लमहे भर के लिए हमारी नजरें मिली हैं, "वैसे भी वह शहर देखने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ।" अन्तिम वाक्य कुछ हड़बड़ा-

कर जोड देती हूँ···और आगे भी जल्दी-जल्दी कुछ कहना चाहती हूँ, ताकि यह जाहिर न हो सके कि जिस बात के बारे में मैंने कहा है, वह मेरे मन को कहाँ, किन-किन स्तरों पर छूती आयी है···लेकिन कहने लायक कोई बात नहीं सूझती, बीते दिनों की यादें ही सहसा भर आयी आँखों में झिलमिलाने लगती हैं, एक-दूसरे से गुँथी हुई···कोई सुबह, कोई शाम, कोई रात ऐसी न गुजरी होगी, जब उन्हें याद न किया हो। अचानक उनकी शादी की खबर सुनकर शुरू-शुरू मे तो बस, स्तब्ध भाव से उनकी दी हुई चीजें ही सहेजा करती थी···किताबें, तस्वीरें, मालाएँ, रूमाल, दुपट्टे, एलबम ···और किसी शादी की बात सुनते ही आँखें भर आती थीं।···कमरा बन्द किये, तकिये मे मुँह छुपाये, घण्टो पड़ी रहती थी।···चारों ओर गहरा सन्नाटा होता, खिडकी पर गाढा अँधेरा मँडराने लगता, और हल्की हवा मे कैलेण्डर के पन्ने फड़फड़ाते रहते।···तब जिन्दगी अच्छी तरह समझ मे नहीं आती थी।

"आप यहाँ कब तक हैं?" नन्हे-से रूमाल मे हथेली की नमी सुखाते हुए मैंने पूछा है।

"बस···आठ-दस घण्टे और···" वे मेरी ओर देखकर व्यथा से मुस्करा दी हैं, फिर कुछ रुककर कहा है, "पापा रिटायर हो चुके हैं, अब देहरादून में ही रहना चाहते हैं।···यहाँ का सब 'वेच-बाच' दिया है।"

"ममी-पापा भी साथ ही जा रहे हैं?" कुछ रुककर पूछती हूँ।

"हाँ···" वे नीचे फिसली चूड़ियाँ ऊपर सरकाती हैं, फिर एक नजर बायीं कलाई की नन्ही-सी घड़ी पर डालती हैं, "तुम अब चलोगी न?"

"जी!"

"मैं तुम्हें घर छोड़ती चलूँगी।···तुम्हारी सहेली तो शायद अब आयेगी नहीं।" कहते हुए वे जिप खीचकर पर्स खोलती हैं।

···वेटर पर्दा खिसकाता हुआ निकल जाता है, तो मैं कुर्सी पीछे सरकाकर उठती हूँ।···कमीज के सामने के दोनों कोने थाम, हल्के-से नीचे खींचती हूँ, दुपट्टा सँभालती हूँ और आगे झूल आयी चोटी पीछे झटक देती हूँ।···कितनी लटें उड़कर माथे पर आ गिरी हैं।···मेरी साँस तेज-तेज चलने लगी है और मुझे अपनी पसीजी उँगलियाँ काँपती-सी महसूस होती

हैं।…एक हाथ सीने पर बाँध, दूसरे की मुट्ठी में जोर से रूमाल भींच लेती हूँ। …सहसा खिड़की से हवा का एक तेज झोंका आता है और मेज के चमकदार काले काँच में उनके उड़ते पल्ले का अक्स दिखायी देने लगता है…पल्ला कबूतर के परों जैसा उजला, साफ-सफेद है…लेकिन मेरी भरी-भरी आँखें उसमें टेढ़ी-मेढ़ी, काली लकीरों के फूल देख रही हैं। □

घर से घर तक

रंजीत ने गेट पर घूमती गाड़ी में से हाथ हिलाया और लंबे हॉर्न के साथ दायीं ओर मुड़ गया। वह हाउसकोट की जेबों में हाथ डाले, एक खंभे से टिकी, टैरेस पर खड़ी रही। पोर्टिको के बाहरी हिस्से में नीचे तक बड़ी-बड़ी बेलें झूल रही थीं और उनसे उलझकर आती धूप ने दीवार पर आड़े-तिरछे ढाँचे बना दिये थे। ऊपर किसी कोने में कुछेक चिड़ियों का झुंड बराबर चूं-चूं कर रहा था। पोस्टमैन तेज-तेज चलता हुआ आया और लेटरबॉक्स में कुछ डालकर निकल गया।

वह एक गहरी साँस लेकर मुड़ी और अन्दर आ गयी। एक सोफे में धँसकर दोनों अँगूठों से बंद पलकें सहलायीं। गहरे अँधेरे में चमकते तारे-से टूटने का आभास हुआ। साथ ही माथे के भीतर बायें किनारे पर एक नस हलके-से तड़क उठी। रात चार बजे के लगभग अनायास उसकी नींद टूट गयी थी और फिर सुबह धूप निकलने तक बराबर करवटें बदलीं।

आया ने कप मेज पर रखा। फिर अन्दर दराज खुलने और बंद होने की आहट आयी। उसने हाथ बढ़ा कर एम्प्रो की स्ट्रिप ले ली। एक गोली

मुँह में रखी। फिर एक बड़ा-सा घूंट लिया। फिर दूसरी गोली मुँह में रखी। फिर एक और घूंट लिया। मन में आया, अगर इसी तरह स्ट्रिप खत्म कर दे, तो ? ये नींद की गोलियाँ थोड़े ही हैं। मौत नहीं आयेगी··· जैसे इतमीनान-सा हुआ। उसने सिर झटका। इसी तरह खाली रहने से बेकार की बातें तो दिमाग में आयेंगी ही। उसने हाथ बढ़ाया और सेटी पर पड़ा कॉमिक उठा लिया। ऊपर दायें कोने में बड़े-बड़े अक्षरों में शालू ने अपना नाम लिखा था। उसके इर्द-गिर्द गोलाकार लकीरों से दो फूल बना दिये थे। उसने एक पन्ना पलटा। स्त्री-पुरुष की दो तसवीरों को शालू ने 'मम्मी-पापा' का दर्जा दिया था। बकरी के एक चित्र पर 'आया' दर्ज कर दिया था।

आज दोपहर को क्या किया जाये ? रक्षा, या सुमति ? पर किसी के पास भी कुछ देर बैठना उनके साथ अन्याय मालूम देता है। वह सिर्फ 'हूँ-हाँ' करना चाहती है और पास बैठे व्यक्ति के बोलने के साथ ध्यान सतह से नीचे डूबकर स्मृतियों में उलझने लगता है। कॉमिक एक ओर फेंकते हुए उसने सोचा, कितनी नृशंस और बर्बर होती हैं ये यादें···!

वह एक झटके-से उठी और कैबिनेट तक आयी। रेडियो का स्विच दबाया। फिर बंद किया। फिर दबाया। फिर बंद किया। स्टैक के रिकार्ड करीने से लगा दिये। हाथ अनायास कोने के एल० पी० पर ठिठका, जो उसने दिया था। जैकेट की रंग-बिरंगी डिजाइन देखी। उँगलियाँ चिकनी सतह पर फिसलीं। ध्यान नीचे डूबने लगा। उसने शुरू में प्रतिरोध का कितना प्रयत्न किया था···उससे और अपने आपसे। चेहरे पर बराबर गंभीरता का मुखौटा रहता था और उसके साथ निरंतर सूक्ष्म-सी, सर्द दूरी चल रही थी। वह कारोबारी बारीक मुसकान से उसके केबिन में दाखिल होती थी और निगाह झुकाये हुए हस्ताक्षर के लिए खुली फाइल मेज पर रख देती थी। पर वापस लौटते हुए खुले अंगों की त्वचा पर बराबर उसकी दृष्टि की ऊष्मा का अनुभव होता था और वह बार-बार अपने को झुठलाती थी कि यह एहसास उसे तनिक भी उमंग नहीं देता। लेकिन रात के

अँधेरे में जब एकाएक नींद टूटती, तो कहीं भी बदन पर सोये हुए रंजीत के स्पर्श से वितृष्णा होती थी और सहसा जी में आता कि उसे छूती हुई यह बाँह केवल एक पल के लिए किसी और की होती···

उसे इस नयी जगह के पिछले कुछ दिन याद आये—सूने-सूने, उदास। घर का सन्नाटा। सुबह से शाम तक का खालीपन। रंजीत और शालू के न होने पर एकाकीपन की कचोट और उनके होने पर भी अकसर मन के किसी कोने में उसी अकेलेपन की कसक। फ्लैट में इधर-से-उधर का निरुद्देश्य चक्कर। इस कुर्सी पर बैठना। उस खिड़की के सामने खड़े हो जाना। शालू का होमवर्क। रंजीत की धुली बनियान। शालू का ओवरकोट। रंजीत की चाय। शालू के मोजे। रंजीत की सिगरेट।···उसने ठंडी सांस ली और अन्दर कमरे में आ गयी। सब दुरुस्त था। बिस्तर ठीक करके कवर बिछा दिये गये थे। नाइट टेबल से जग व गिलास हट चुके थे। भरी ऐश-ट्रे खाली हो गयी थी। शालू और रंजीत के फेंके कपड़े वार्डरोब में पहुँच गये थे।

वह कुछ क्षण खोजभरी दृष्टि से इधर-उधर देखती रही। नहीं, करने को कुछ भी नहीं था। तो फिर नहा ही लिया जाये, वह मन-ही-मन बोली। गुसलखाने का दरवाजा बंद कर हाउसकोट उतारा और मुड़ कर टॅप के निकट पहुँचते-पहुँचते ठिठक गयी। उँगली यंत्रचालित-सी सफेद स्विच पर पहुँची और दीवार पर जड़े बड़े आईने में उसका अक्स चमक उठा। आंखों में वही सूनापन। उसने तीन-चार बार पलकें झपकायीं, जैसे इसी तरह उस भाव से छुटकारा पा लेगी। दीवार पर कोहनी टिकाकर यों ही बेसिन का टॅप खोलते-बंद करते हुए याद करने की कोशिश की कि खुली पलकों के दायरे में भरा यह शून्य पहले-पहल कब लक्ष्य किया था···शायद यहाँ आने के कुछ समय बाद। अनायास। ऐसे ही किसी दिन···

दरवाजे पर हल्की-सी थपकी पड़ी। उसने पलटकर देखा। कुछ जोर से पूछा—क्या है?

उधर के आया की आवाज आयी—आपका फोन।

वह पल-भर के लिए ठिठकी रही। फिर खूँटी से हाउसकोट लिया और एक आस्तीन में बाँह डालते हुए दूसरी से सिटकनी खोल कर बाहर

आ गयी। आया तार पर पड़ी शालू की गीली शमीज पर क्लिप लगाने लगी थी।

—किसका है ?

आया रुक गयी—जी, उन्होंने कुछ बतलाया तो था, पर मेरी समझ में नहीं आया।

वह पैसेज से घूमकर ड्राइँगरूम में आयी। रक्षा, सुमति या मिसेज वत्रा, इन तीनों में से कोई होनी चाहिए। रिसीवर उठाते हुए उसने देखा, बगल के रैक पर रखे सुनहरे फ्रेम पर धूल की एक बारीक तह जम गयी है।

—हैलो···!

दूसरी ओर पल-भर चुप्पी रही। फिर धीमा पुरुष-स्वर सुनायी दिया—हैलो, बुलू !

उसका दिल एक बार जल्दी से धड़का। फिर अपनी समरस ताल पर आ गया।

—कैसी हो ?

उसने घूंट-सा भरा। मृदु स्वर में कहा—ठीक। क्षण-भर का मौन। फिर—कब आये ?

—परसों···कान्फरेंस थी। दोनों दिन उसी में उलझा रहा।

वह निकट के मोढ़े पर बैठ गयी—कब तक हो यहाँ ?

—कल जाऊँगा···सुबह की फ्लाइट से। फिर लमहे-भर की खामोशी के बाद—और···? क्या हालचाल है ? उसकी आवाज में खराश थी, जैसे खाँसी हो रही हो। सिगरेटें बहुत पी होंगी।

—ठीक।

—घर के दोनों लोग मजे में हैं !

—हाँ।

—और तुम ?

—मैं···? गले के अन्दर जैसे कहीं कुछ फँसने लगा। दूसरा हाथ घुटनों के बीच दबा कर वह निश्चल बैठी रही। क्षणिक विराम। उसने मन-ही-मन समझ लिया, अब वही मोड़ आ गया है।

—खाली हो किसी वक्त ?

पल-भर बाद उसने अपने-आपको कहते सुना—हूँ। और खाँसकर गला साफ किया।

—शाम को रखें ?

—नहीं, शाम को नहीं। ये दफ्तर से आ जायेंगे।

—दोपहर ?

—हूँ।

—एक तो बज ही गया है…दो के करीब…'मुगल रूम' में… ठीक ?

—अच्छा।

लमहे-भर रुककर उसने रिसीवर रख दिया। हवा के एक तेज झोंके से खिड़की का पल्ला खुला और मेज पर रखी पत्रिका के पन्ने फड़फड़ाने लगे। उसने बढ़कर चिटखनी लगायी। फिर परदा पूरा खींच दिया। रैक से फ्रेम उठाया और आस्तीन से दो-तीन बार रगड़ दिया। तसवीर देखी, तो पल-भर के लिए लगा कि नहीं, यह मैं नहीं हो सकती। सिर्फ दो साल पहले…वह बीच में बैठी थी। एक कंधे पर पति का हाथ था, दूसरे पर शालू का। उसकी मुसकान में संतोष था और आँखों में चमक। केवल दो वर्ष पहले। शालू की इसी वर्षगाँठ के बाद ही तो उससे परिचय हुआ था…

बदन पर तौलिये के रेशों की मुलायम छुअन महसूस करते हुए वह कुछ क्षण गुसलखाने में आईने के सामने खड़ी रही। पिछले महीने वजन फिर कुछ बढ़ गया था, हालाँकि खाने-पीने में वह बराबर एहतियात बरत रही थी। उसने हलके हाथों से कमर सहलायी। कुछ फर्क महसूस नहीं हुआ। तौलिया खोलते हुए उसने डिब्बा उठाया और हलके हाथों से पाउडर छिड़कने लगी।

वार्डरोब के सामने वह कुछ क्षण ठिठकी। दायें कोने में शिफॉन की वह साड़ी थी, जो उसने दफ्तर में पहले चुंबन के समय पहन रखी थी। इसी के पल्लू में खेलते हुए उसने उसके कंधे पर सिर रख कर बायाँ कान की लौ हलके-से काट ली थी। पल-भर के लिए उसकी निगाह अपने-आप

धुंधला गयी और वह पहला रोमांच अन्दर कहीं सुगबुगा उठा।

कपड़े पहनकर वह स्टूल पर आ बैठी। जूड़ा बांधा। हलका-सा मेकअप किया। दराज से एक चेन निकालकर गले में डाल ली। दायीं कलाई में तीन चूड़ियाँ पहन लीं। फिर उठ खड़ी हुई और ऊपर से नीचे तक अपना जायजा लिया। दरवाजा खोलकर आया को आवाज देते हुए वह टैरेस पर आ गयी। बेंत की गोलाकार कुर्सी एक कोने में खींची, अखबार उठाया और सरसरी निगाह से सुर्खियाँ देखने लगी। अन्दर के पन्ने पर रिआयती बिक्री का विज्ञापन पलटा। आज के कार्यक्रमों पर एक नजर डाली। अगले हफ्ते से बदल रही और इतवार को सुबह के शो में दिखायी जाने वाली फिल्मों के नाम पढ़े। आया ने आकर ट्रे खाली की। उसने सैंडविच का एक टुकड़ा काटा। फिर कॉफी का घूंट लिया।

तो यह हो गया है! बंबई छोड़ने के बाद उसने कई बार इस घटना की कल्पना की थी और कई तरह से इसे बनते हुए देखा था। उसकी अपनी भूमिका भी कई प्रकार की थी। लेकिन आज जो हुआ, वैसा उसने एकाध बार ही सोचा था। शायद कम इसलिए ही सोचा था कि अगर सचमुच होने की बात आये, तो···? क्या इन महीनों के अंतर्द्वन्द्व और यातना में कहीं-न-कहीं अपने आप ही यह निश्चय हो रहा था कि···?

जोर की खनक के साथ मग रख कर वह उठ खड़ी हुई। अन्दर आ, मेज से पर्स उठाया। दराज से दो-तीन नोट निकाल कर पर्स में डाले।

तभी एक कोने में एक गुलाबी-सा कागज दिखायी दिया। लेकर खोला, तो लांड्री की रसीद थी···शालू का गरारा-कमीज। वापसी की जगह दस तीज पहले की तारीख पड़ी थी। उसने दाँतों-तले होठ दबा लिया···यह उसे क्या होने लगा है! दरवाजे पर आकर वह रुकी। आया से कहा कि वह बाहर जा रही है। लौटने में शायद देर हो जाये। शालू के स्कूल से वापस आने पर दूध व स्नैक्स दे देना। सफेद शीशी से एक टिकिया अपने सामने खिलाना और खेलने के लिए कंपाउंड से बाहर मत जाने देना।

वह धीमे कदमों से नीचे उतरी। लेटरबॉक्स खोलकर देखा, लिफाफा नीचे वालों का था। गेट से निकल कर वह कुंडा लगाने लगी। क्षण-भर

के लिए निगाह ऊपर ठहरी···सब चुपचाप। रुका हुआ।

—टैक्सी···!

अन्दर घुसने पर वह दो पल के लिए ठिठकी। तभी कोने की मेज से झक् सफेद कफ पर काले कोट की आस्तीन वाले एक हाथ ने ऊपर उठकर हल्की-सी चुटकी बजायी। वह बहुत बारीक स्मित से आगे बढ़ी। उतना फासला तय करते हुए उसकी आँखें एक तरह से मेज पर ही टिकी रहीं।

—हैलो···! वही मधा स्वर। वह तनिक-सा मुसकरायी। कुर्सी खींचकर बैठी। पर्स एक कोने में। हाथ मेज पर। अधखुली मुट्ठियाँ। अशक्त-सी। निगाह ऊपर उठी और टाई की गाँठ तक आकर टिक गयी। तभी उसने अपने एक हाथ पर दबाव महसूस किया···यही स्पर्श तो था, जिसके लिए वह···उसके अन्दर कहीं कुछ पिघलने लगा और पलकों की कोरों पर नामालूम-सी नमी महसूस हुई।

हाथ में ट्रे लिये इस ओर आते वेटर को देखकर वह सीधा हुआ। पैकेट से सिगरेट निकाली। सुलगायी। लंबा कश। ऐश-ट्रे से उठती धुएँ की मद्धिम लकीर।

—कैसी हो?

—ठीक। उसने स्निग्ध मुसकान से कप में एक क्यूब डाला और चम्मच चलाने लगी।

—यहाँ कैसा लग रहा है?

—इनके लिए तो अच्छा है। मैनेजर से पहले से मुलाकात है। फ्लैट के लिए बहुत कम अपने पास से देना होता है। कंपनी से गाड़ी भी मिली हुई है। एक घूँट लिया—शाल को भी अपना स्कूल वहाँ से बेहतर लगता है। पड़ोस में भी उसके साथ के दो-तीन बच्चे हैं।

वह नाखून से सीधी-टेढ़ी रेखाएँ खींचने लगी।

—मैं तुम्हारे बारे में पूछ रहा हूँ!

उँगली जहाँ-की-तहाँ रुक गयी। पल-भर के लिए उसकी निगाह फिर नीचे देखने लगी। अन्दर से फुरहरी-सी उठी और गहरी ठंडी साँस से

बदल गयी। यहाँ के वे शुरुआती दिन याद आये, जब वह दोपहर को कमरा बंद किये, खिड़कियों पर परदे चढ़ाये, तकिये में मुँह छिपाये पड़ी रहती थी···जब कितनी बार एकाएक चौंककर पति से कहना पड़ता था—तुमने क्या कहा ?

—कुछ कहोगी नहीं ?

उसे लगा कि वह हथेलियों में चेहरा छिपाकर फफक पड़ेगी। उसने हाथ गोद में लेकर मुट्ठियाँ सख्ती से भींच लीं। फिर घूंट-सा भरते हुए ऊपर देखा। सामने की आँखों में वही आहत भाव था, जो पिछले दिनों लगातार उसे चुभता रहा था···जिसने सारी यादों में तीखे होकर उसे इस तरह बेचैन किया था कि कई बार रात को बिस्तर पर कोई आहट न होने देने के लिए उसे तन-मन का सारा बल लगा देना पड़ता था।

—कुछ मत पूछो···मुझसे कुछ मत पूछो ! उसने अस्फुट स्वर में कहा—तुमने मुझे बहुत मजबूर कर दिया है···

आगे कुछ कह सकना संभव नहीं हुआ।

वह दायीं ओर देखने लगा, जहाँ मेज पर तीन व्यक्ति एकाएक कुछ ऊँचे स्वर में बात करने लगे थे। उसने बेवजह ही पर्स खोल लिया और जब कुछ करने को न हुआ, तो रुमाल निकालकर मुट्ठी में भींच लिया। फिर थोड़ा झुकी और तीन-चार बड़े-बड़े घूंट लिये।

—अपने बारे में तो कुछ नहीं बताया !

—क्या बताऊँ ? वह क्षण-भर रुकी—कैसे हो···क्या कर रहे हो ?

उसने मुसकान के साथ कहा—मजे में हूँ···नौकरी कर रहा हूँ।

वह झेंपी-सी हँसी—आफिस में सब लोग ठीक हैं ?

—हाँ।

—मेरी जगह पर कौन आया है ?

उसकी आँखों में फिर वही चोट खाया भाव तैर आया—कोई भी आये, तुम्हारे लिए क्या फर्क पड़ता है !

वह नीचे देखने लगी। कुछ ठहरकर बोली—मिसेज रोशन अच्छी तरह हैं ?

लगा, वह इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा था—क्या यह सच है कि

उन्होंने तुम्हें दो खत लिखे थे ?

उसने आहिस्ता से हामी में सिर हिलाया।

—वह काफी दुखी और हैरान थी कि तुमने जवाब क्यों नहीं दिया !

—मैं कोशिश कर रही थी कि शायद ऐसा हो सके···

वह सवालिया निगाह से देखता रहा।

—उस बीते हुए से हट पाना···! उसे अपने पर हलका-सा आश्चर्य हुआ। अब वह कितनी सहजता से बोल रही थी ! अब किसी आवेग का अवरोध नहीं था। क्या यहाँ तक आ जाने से वह कशमकश बुझ गयी, जो पिछले दिनों कितनी गहराई से उसे मथती रही है ?

—एक बात पूछूँ ?

—हूँ ? उसने सिगरेट का टुकड़ा ऐश-ट्रे में रगड़ दिया। फिर कप पर केतली झुका दी।

—हाल में तुम कितनी बार यहाँ आये हो ?

वह अभिप्राय समझ गया। तुरन्त नीचे देखने लगा। थोड़ा-सा दूध उड़ेला। चम्मच चलाया। एक घूंट भरा। फिर उसकी ओर देखा—तीन बार। एक सिगरेट जलायी। दो-तीन कश खींचे—पहली बार हाथ में तुम्हारा नंबर लिये फोन तक आया। फिर इरादा छोड़ दिया। दूसरी बार आते ही सात-तीन-एक तक मिलाया, फिर रुक गया। दो रोज बाद शाम को वापस जाने के दस मिनट पहले नंबर डायल किया, तो तुम्हारे पति की 'हैलो' सुनकर रिसीवर रख दिया।

—शाम से पहले तो कर सकते थे ? वह एकाएक बोल उठी।

उसने स्थिर दृष्टि से देखा—तुमने मना नहीं किया था ?

तब मुझे कहाँ पता था···वह मन-ही-मन बोली, तब मुझे कहाँ पता था कि इतनी विवश हो जाऊँगी ! उसने एक गहरी साँस ली। फिर वे दिन याद आये···न हँसी, न मुसकान। न आना, न जाना। न बात, न [illegible]। पति उसके रूखे बालों पर स्नेह का हाथ फेरकर कहते—क्या बात है, बुलू ? यहाँ अच्छा नहीं लगता ? शानू दोनों बाँहों में उसे घेर, [illegible] उलाहना देती—तुम कैसी चुप्पी-चुप्पी हो गयी हो !

—तो···? वह मुसकराया—क्या होना है दिन-भर ?

उसने सरकता हुआ पल्लू सँभाला। मंद स्मित से कहा—होता क्या है, अपना घर सँभालते हैं!

सामने की दृष्टि कुछ क्षणों तक एकटक देखती रही—सँभल जाता है?

अन्दर पैठती हुई आँखों में चुनौती···उसे अनायास ही जुहू की वह शाम याद आयी, जब उसने शादी का प्रस्ताव रखा था। वह ऊपर की ओर देख नहीं सकी। उसकी मुसकान होंठों में ही जज्ब हो गयी। यों ही हाथ बढ़ाकर ऐश-ट्रे में सिगरेट का टुकड़ा छुआ। फिल्टर के किनारों पर होंठों की नमी मिली हरारत महसूस हुई। तुम कितनी आसानी से पूछ सकते हो सब···वह मन-ही-मन बोली।

—अभी कहीं जॉब नहीं लिया?

उसने पूर्ववत् नीचे देखते हुए नाहीं में सिर हिलाया···धीरे से तनिक ठहरकर कहा—कुछ दिनों बाद करूँगी।

—कश्यप आज बतला रहे थे···यहाँ की ब्रांच में शायद एकाध जगह है।

—नहीं। इस कंपनी में नहीं।

—क्यों?

कुछ पल निगाह मिली रही। कातर स्वर में कहा—तुमसे दूर···! लगा कि आवेग से गला रुँध जायेगा। मन हुआ कि बाँहों में घेरते हुए उसके सीने में मुँह छिपा ले। आँखें सिल्क की चौड़ी टाई पर टिक गयीं। फिर नीचे। मेज की सतह। लंबा विराम।

—तुम्हारा पी० एफ० वगैरह आ गया है? उसने नयी सिगरेट सुलगायी।

—अभी नहीं।

—क्यों?

—ग्रेच्युइटी को लेकर कुछ पेचीदगी है।

—अच्छा···मैं देखूँगा।

फिर लंबा विराम। उसने सिगरेट खत्म कर ऐश-ट्रे में मसल दी। सरसरी नजर से इधर-उधर देखा। वह समझ गयी, वह क्षण आ गया है।

—सुनो···! स्वर धीमा।

उसने निगाह ऊपर उठायी।

—मैं कमरे में चल रहा हूँ। तुम पाँच मिनट एक बार आ जाना··· नंबर सात सौ ग्यारह।

वह नीचे देखने लगी। रुकी हुई साँस छोड़ दी।

उसने बदली हुई आवाज में कहा—अगर चाहो, तो उस बार की तरह यहाँ से निकल कर सीधी घर भी जा सकती हो। मैं बस, दस मिनट ऊपर ठहरकर कहीं घूमने निकल जाऊँगा, इसलिए तुम्हें इस फिक्र में पड़ने की जरूरत नहीं है कि मैं फिजूल परेशान हो रहा होऊँगा।

बिना देखे वह समझ गयी कि उसकी आँखों में फिर वही चोट खाया भाव उभर आया है। वह उठ खड़ा हुआ और लंबे कदमों से बाहर निकल गया। उसने हताश भाव से मेज पर कुहनियाँ टिकायीं और हथेलियों में मुँह छिपा लिया। फिर सहसा हाथ हटा लिये और सीधी हो गयी। आँखें खुद-ब-खुद अधमुँदी हो उठीं। होंठों के कोनों पर वह सिहरन सुगबुगाने लगी, जिसे कितनी ही बार दबाने की असफल कोशिश की थी।

एकाएक निगाह घड़ी पर चली गयी। हाथ में अटैची उठाये शालू वापस आ गयी होगी। अगर दरवाजा बंद होगा, तो जब तक खुलेगा नहीं, तब तक घंटी के बटन पर बराबर उँगली। फिर पूरे घर में गूँजती पुकार—मम-मम-मम-मम-मम-मम-मम-मम-मम-मऽऽम्मी···! और वह जहाँ भी हो, वहीं किलकारी के साथ गले में बाँहें।

उसने कुर्सी पीछे खींची और पर्स उठाते हुए सीधे बाहर निकल आयी। लाउंज में से गुजरते हुए दायें या बायें किसी तरफ नहीं देखा। रिसेप्शन की लड़कियों पर एक उड़ती निगाह डालते हुए वह पहली लिफ्ट में दाखिल हुई और हत्थे पर उँगलियाँ रखी ही थी कि सहसा एक युवक सामने आकर ठिठका। उसने हाथ हटा लिया और सामने देखने लगी। युवक ने अन्दर आकर सींखचा बंद किया।

—व्हिच फ्लोर?

—सेवेंथ।

लिफ्ट चौथे मंजिल पर रुकी। युवक के निकल जाने पर उसने सात

के बटन पर उँगली रखी। बाहर निकली, तो कारीडॉर बिल्कुल खाली था। पर तीन-चार कदम चलते ही एकाएक दरवाजा खुला और कोई स्टीवर्डेस बाहर निकली। उसकी दृष्टि पूर्ववत सामने रही। ७११ के दरवाजे पर 'डोंट डिस्टर्ब' की तख्ती लगी हुई थी। उसने हैंडिल पर हाथ रखा, पल-भर ठिठकी, फिर एक लंबी साँस लेकर अन्दर घुस गयी।

कंघी घुमायी, तो लगा कि एक ओर के बाल उलझ गये हैं। आहिस्ता-आहिस्ता उँगलियाँ चलाते हुए कलाई की घड़ी देखी। पति को दफ्तर से आये कुछ देर हो चुकी होगी। क्योंकि वह बुलाने को नहीं हैं, इसलिए हो सकता है कि बालू पड़ोस में या पार्क में खेल रही हो। पता नहीं, आया उसे कुछ खिला-पिला पायी होगी, या नहीं।

उसने जूड़ा बनाया। कपड़े पहने। हलका-सा मेकअप किया। होंठों पर मैक्सफैक्टर की स्टिक फिराते हुए सहसा ठिठक गयी। ध्यान से आईना देखा। क्या अभी भी आँखों में वही महीनों पुराना भाव है? मन में आतिशबाजी के अनार की तरह यातना के वे क्षण कौंधे और आवेग से भीतर थरथराहट-सी भर गयी। उसने हाथ बढ़ाकर दीवार का सहारा ले लिया···बेसिन का टैप खुला छूट गया था और बारीक छेदों से धारा के बहने की सरसराहट सुनायी दे रही थी।

दरवाजे पर एक बार हलकी-सी 'खट' हुई—बुलू···मैंने कब से चाय बना दी है।

वह दीर्घ निःश्वास लेकर सीधी हुई। टैप बंद किया। पर्स उठाया और बाथरूम से बाहर निकल आयी। पल-भर के लिए पलकें अधमुंदी हो गयीं। सोफे के एक कोने में बैठने के बाद उसे ध्यान आया कि कमरे की सारी रोशनियाँ जली हुई हैं। कप उठाकर उसने तीन-चार बड़े-बड़े घूंट भरे।

—ठंडी तो नहीं हुई?

उसने इनकार में सिर हिलाया। फिर तीन-चार घूंटों में कप खाली कर दिया। पीछे टिक गयी और हाथ वक्ष पर बाँध लिये। सामने वाली

दीवार पर शीशे के बहुत बड़े पैनल के पार अँधेरे की स्याही।

—और ?

उसने हामी मे सिर हिलाया। केतली से पानी उडेले जाने की आवाज सुनी। चम्मच की हलकी खनखनाहट। बस, यही कुछ क्षण है। इसके बाद फिर वही नीम-अँधेरा कमरा। वही लंबी, सूनी दोपहर। इसी एक स्पर्श के लिए जिस्म की तीखी ललक···गले मे कुछ अटकने-सा लगा। साथ ही इस बात का एहसास कि आँखों की नमी से मेकअप कहीं खराब न हो जाये। चूडियों की हलकी टकराहट के साथ पर्स से रूमाल निकाला। क्षण-भर बाद कंधे पर हलका स्पर्श। सांत्वना देता-सा—क्या बात है, बुलू ?

हिलककर उसके सीने मे मुँह छिपा लिया। यहाँ से वहाँ चेहरा घुमाती रही। फिर उसके गले पर होंठ जमाकर थरथराहट दबाने की कोशिश की। चुप्पी। भीगापन। सुकून।

—अब कब आओगे ?

—सितंबर में। उसने कप को हाथ लगाकर देखा—यह तो बिल्कुल ठंडी हो गयी है! और मँगवाता हूँ। फोन की तरफ हाथ बढ़ाया।

—नहीं। अब मैं चलूँगी। वह यों उतावली से बोल उठी, जैसे एहसास इसी घड़ी हुआ हो—बहुत देर हो गयी है।

वह ठिठक गया—क्योंं ?

—हूँ। वह उठ खड़ी हुई। पर्स सँभाला और दरवाजे की ओर बढ़ी—अच्छा···!

ड्रेसिंग गाउन की जेबों में हाथ डाले, वह कुछ पल एकटक देखता रहा। फिर निकट आया···अन्तिम चुंबन। विदा के क्षणों का कुछ और खिंचना···

दरवाजा बंद हुआ, तो 'डोंट डिस्टर्ब' की तख्ती हलके से हिली। उसने रुकी साँस छोड़ी और स्थिर कदमों से लिफ्ट तक आयी। बटन दबाया। कुछ लमहों बाद सींखचे खुले। वह किसी की ओर देखे बिना एक कोने में टिक गयी।

···दरबान ने तपाक्-से दरवाजा बंद किया और सलाम ठोंका। गोलाकार मोड। तेजी से पीछे छूटते लैंपपोस्ट। छिपी रोशनी के धब्बे

की चमकती बौछार। हवा का एक तेज झोंका आया, तो काँच चढ़ा लिया। एक कोने में सिमटी। पलकें खुद-ब-खुद मुंद गयीं। बंद आँखों के अँधेरे में रंग-बिरंगे अनार फूटे···अनेक स्मृतियों से चेहरे पर स्निग्ध मुसकान।

लाल बत्ती पर एकाएक झटका लगा, तो आँखें खुल गयीं। बगल में खड़ी कार के रेडियो से किसी धुन के मंद स्वर हवा में तैरते हुए मँडराये। रुके हुए ट्रैफिक का आकुल शोर। हॉर्न की लंबी, घायल चीत्कार।

दायीं ओर मुड़ते ही उसने टैक्सी रुकवायी। लांड्री का शटर आधा गिरा हुआ था। उसने उँगली से खट्-खट् की। फिर नीचे झुककर भीतर आ गयी और रसीद निकालकर काउंटर पर रखी। गरारा-कमीज ध्यान से देखा, तो शोरबे के धब्बों का हलका आभास अभी भी शेष था। उसकी आपत्ति पर सामने वाले ने नर्मी से कहा कि एक-दो और धुलाइयों में बिलकुल साफ हो जायेंगे। वह बोली कि उसने इसी बार बिलकुल साफ हो जाने का भरोसा दिये जाने पर ही कपड़े डाले थे और कि पुराने ग्राहकों के साथ ऐसा व्यवहार अच्छा नहीं है। उसने बिल से दो रुपये काट लिये। काउंटर के व्यक्ति ने एक बार प्रतिवाद किया, फिर कड़ी 'ठीक है' सुनकर चुपचाप पैक करने लगा।

···सड़क के सामने वाले हिस्से में रोशनी की कँपकँपाहट। पहियों के निकलने पर पानी के छपाके। फव्वारा। पार्क का सामने का गेट। मिल्क बूथ। क्लिनिक। पार्क का कोना। बेकरी। आइसक्रीम स्टाल। पार्क का पिछला गेट।

—बस।

दरवाजा बंद होने की खट्। चार-नब्बे···उसने मीटर देखकर पर्स खोला और एक नोट बढ़ाते हुए मुड़ गयी। बरामदे में रोशनी थी। पोर्च में गाड़ी खड़ी थी। ऊपर ड्राइंगरूम की खुली खिड़कियों से मद्धिम संगीत।

छोटे कदमों से जीना पार किया। आहट पाकर पति ने अखबार से निगाह उठायी—हैलो···!

वह मुसकान से उत्तर देकर अन्दर चली गयी। आहट पा, प्याज के टुकड़े कतरते हुए आया ने इस ओर देखा।

—खाना तैयार है ?

—जी।

वह पैसेज से निकलकर कमरे में आयी। पर्स मेज पर रखा, बड़ा लिफाफा वार्डरोब की दराज में। आईने के आगे, स्टूल पर आ बैठी। बकल खोलकर सैंडिल निकाले। जूड़े की क्लिपें व जाली खोली। उठने को ही थी कि परदा लहराकर हटा···और रुआंसा स्वर—कहां थीं तुम ? हम इत्ती देर से ढूँढ रहे थे।

पल-भर ठहरकर हलकी मुसकान से कहा—रक्षा आंटी के यहाँ। और उसका स्पर्श पाते ही एकाएक अन्दर कुछ धसक गया। उसने हिलक-कर शालू को बाँहों में भर लिया, जैसे कहीं खोने के बाद मिली हो और उसकी हथेलियों को, माथे को, कपोलों और आँखों को उन्मत्त की तरह चूमने लगी।

—मैडम ने कहा कि तुम क्लियोपैट्रा बन जाना। क्राउन और सेप्टर हम बनाकर दे देंगे। ड्रेस रंगीन होनी चाहिए और खूब लंबी। सुनहरे डिजा-इन वाली जूतियाँ तुम्हारे पास हैं ही···

खाना खत्म होने पर वह बिना कपड़े बदले शालू के साथ उसी बिस्तर में लेटी थी। शालू अपनी नाइट ड्रेस पहनकर आयी थी और उसके ऊपर एक बाँह रखते हुए रोजनामचा सुना रही थी। वह अपने में ही डूबी हुई बीच-बीच में 'हाँ-हूँ' कर देती थी। उसे मालूम ही नहीं पड़ा कि शालू का बोलना कब नींद की समतल साँसों में डूब गया। जब ध्यान आया, तो उसने शालू पर चादर ठीक-से समेट दी और उसके रूखे बालों की छुअन चेहरे पर महसूस करते हुए आँखें मूँद ली।

कुछ देर बाद बाहर पति की आहट सुनायी दी। दरवाजा बद हुआ। सिटकनी लगी। लैंप का स्विच दबाया जाना। बंद पलकों पर मद्धिम रोशनी का आभास। चप्पलों का निकट आना। धीमा स्वर—बुलू···!

वह साँस रोककर निश्चल रही। कुछ क्षणों बाद पास के डबल पर दबाव। हलकी 'खट्' के साथ अँधेरा। कुछ मिनटों तक दो

करवटें वदली जाने की सरसराहट। फिर मौन।

सड़क पर चौकीदार के लाठी टेकने की 'ठक्-ठक्' हुई। किसी कार का लंबा हॉर्न सुनायी दिया। ऊपर की छत पर कहीं दो विल्लियाँ गुर्रायीं। वाहर टैरेस पर हलकी-सी खनक हुई। उसने सिर उठाकर अँधेरे में ही इधर-उधर देखा। फिर शालू के एक नर्म कंधे पर मुँह टिका, आँखें वंद कर लीं□ □ □